Chapter - 9

# नवम अध्याय

xxxxxxxxxxxxxxxx/

## कला-सौष्टव

==--==--==--

प्रस्तुत प्रबन्ध में कला सौष्टव से हमारा अभिप्राय काव्य शिल्प से ही है. जिस प्रकार कलाकार अनगढ़ और बेढंगे आकार वाली वस्तु को लेता है, अपने हस्तकौशल की कल्पना के द्वारा काट-छाँट, बनाव-सिंगार करके अन्त में ऐसा आकार प्रस्तुत करता है कि दर्शक उसे देखकर अत्याधिक विभोर हो जाता है और अपनी वृत्तियों को भूलकर कलाकार की भावना के साथ साधारणीकरण करता है. काव्य के उपकरण शब्द और अर्थ हैं. इनमें चित्र, मूर्ति या वस्तु की भाँति स्थूल सामग्री नहीं है फिरभी शब्द और अर्थ न तो संगीत के नाद की भाँति ध्वन्यात्मक मात्र हैं और न सर्वथा अमूर्त ही. कवि शब्दों और अर्थों द्वारा जो चित्र प्रस्तुत करता है वह ऐसा ही मूत हो जाता है जैसा कि सामान्य चित्र या मूर्ति . साधारण से साधारण कल्पना वाला सहृदय भी कवि द्वारा प्रस्तुत चित्र देखकर किसी चित्र या मूर्ति से कम प्रभावित नहीं होता. फिर काव्य को साधन न केवल शब्द एवं अर्थ हैं वरन् संगीत भी उसका एक उपकरण है.

कविता की गेयता श्रोता की भावना पर अधिकार करने में बड़ा योग देती है और उसमें रमणीयता तथा रागात्मकता दोनों के पुट देने में सहायक होती है. जिस प्रकार चित्रकार, मूर्तिकार या वास्तुकार अपनी निर्मिति को पुनः पुनः काँटता, छाँटता या संवारता है, उसी प्रकार कवि भी अपने शब्दों को अनेक बार बदलता, उसमें स्वर का निक्षेप करता एवं अलंकार, रस तथा ध्वनि से समन्वित करता है. इस बनाव-श्रृंगार में कलाकारकी भाँति कवि भी कभी-2 इतना एक निष्ठ हो जाता है कि उसके सम्मुख कर्तृत्व के अतिरिक्त विचार गौण हो जाते हैं ।

काव्य का भी अपना शिल्प होता है. चित्र-मूर्ति आदि का उद्देश्य जिस प्रकार रसाभिव्यक्ति है, रंग आदि का चमत्कार

प्रदर्शन नहीं, उसी प्रकार काव्य का प्रयोजन भी रसानन्द की सृष्टि है. चित्र-मूर्ति आदि स्थूल रूप का कर्तृत्व उपस्थित करते हैं, तो काव्य भी शब्द चित्रों तथा दृश्य नाटकों के द्वारा भावों को साकार कर देता है. चित्र, मूर्ति और वास्तु के लिए जहाँ कौशल आवश्यक है तो वहाँ काव्य के लिए भी भावानुरूप शब्दावली, पद लालित्य, गुण एवं अलंकार आदि बाह्य प्रसाधनों की आवश्यकता उपेक्षित है ।

कला, अपने सीमित अर्थों में, काव्य का पर्याय न होकर काव्य की प्रणाली या काव्य का कौशल पक्ष है, जिसका महत्व अनुभूति या रस के शासन में भारतीय साहित्य साधना में अक्षुण्ण रहा है. छठी शताब्दी में ही आचार्य भामह ने काव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि साधु काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम मोक्ष में और कलाओं में प्रीति-कीर्ति आदि की देने वाली होती है. [1] आचार्य भट्ट और कुन्तक भी अभिव्यक्ति के महत्व को पूर्णतया स्वीकार करते हैं. कुन्तक की मान्यता है कि सरस वक्र उक्ति के रूप में प्रकट प्रकट होकर ही अनगढ़ वस्तु, जो पहले प्रतिभा से उद्भासित मात्र रहती है, अरुचिकर रहती है, शाण पर चढ़े हुए मणि के समान उज्ज्वल हो उठती है । [2]

आधुनिक भारतीय आचार्य भी कला या अभिव्यक्ति का महत्व इस रूप में मुक्त कंठ से स्वीकार करते है, विषय और उसकी अभिव्यक्ति को समान महत्व देने के पक्ष में हैं. " सुन्दर अभिव्यक्ति के बिना विषय पंगु रह जाता है और विषय के सौन्दर्य के बिना कला का सौन्दर्य खोखला है । " [3]

डा० नगेन्द्र क्रोचे के पक्ष को सूत्र रूप में रखते हुए लिखा है कि " क्रोचे के अनुसार कला मूलतः सहजानुभूति है, जो अभिव्यक्ति से

अभिन्न है. कला का मूल रूप कलाकार के मानस में घटित होता है- रंग-रेखा, शब्द-लय आदि में उसका अनुकरण सर्वथा आनुसंगिक घटना है । "[4]

अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कला अपने यथार्थ व व्यापक रूप में एक ऐसा मानवीय प्रयत्न है जो अपूर्ण व ससीम सृष्टि में प्रयत्नकर्ता कलाकार को अपने आत्म की पूर्णता और असीमता का अनुभव कराकर उसे अलौकिक आनंद प्रदान करती हैं. कला में मानव वृत्तियों के परिष्कार द्वारा मानवता की उच्च भूमिका की प्राप्ति का प्रयास होता है. इस अध्याय में कला- सौष्ठव के विभिन्न उपकरणों का सूक्ष्म विवेचन कर लेना समीचीन होगा. कला सौष्ठव के अंतर्गत हम मुख्यतः भाषा, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक तथा छंद एवं शैली आदि को लेंगे ।

## भाषा

भाषा मूलतः एक अखण्ड चेतना है.[5] भाषा का निर्माण करने वाले विविध अवयव अपने आप में निर्जीव पिण्ड हैं, वे परस्पर मिलकर ही सप्राण होते हैं. ऐसी स्थिति में भाषा के अवयवों को खोलकर देखना उनकी मूल संश्लिष्ट चेतना के दर्शन में अवश्य ही बाधक होता है. इसके अतिरिक्त यह कहा जा सकता है कि भावाभिव्यक्ति का सबसे प्रमुख साधन भाषा है. इसके माध्यम से ही व्यक्ति अपने मनोभावों को दूसरे तक संप्रेषित कर सकता है. कालरिज के अनुसार कविता अन्य कलाओं से भिन्न इसलिए है कि इसका माध्यम भाषा है.[6] भाषा का विश्लेषण के अभाव में किसी युग की कविता के मर्म तक पहुँचना संभव नहीं है. प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह के शब्दों में भाषा ही वह बैरोमीटर है,

जिससे कवि की अनुभूति का दबाव नापा जा सकता है. कविता के संघटन में भाषा प्रयोग की स्थिति केन्द्रीय है. अनुभूति के नाभिक ( Nucleus ) तक पहुँचने का निकटतम बिन्दु यही है ।[7] भाषा ही वह रास्ता है जिससे गुजरकर कविता के मर्म को पाया जा सकता है. भाषा को इतना महत्वपूर्ण मान लेने के पीछे कविता के शिल्प के महत्व की प्रतिष्ठा की बात नहीं है बल्कि भाषा के द्वारा कविता की आंतरिक शक्ति को पहचानना ही उसका उद्देश्य है. युवा कवि समीक्षक प्रभातकुमार त्रिपाठी की यह धारणा बिलकुल सही है कि भाषा के जरिये ही हम यह जान सकते हैं कि कवि चेहरे को शब्दों ने गढ़ा है या अनुभव की रचनाकुलता ने.[8]

इस प्रकार कविता का महत्वपूर्ण होना भाषा पर अधिक निर्भर हैं. हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों की काव्य भाषा के अध्ययन के पीछे यही धारणा सक्रिय है ।

आज की मानव स्थिति से क्रूर एवं निर्मम साक्षात्कार करने के बाद कवि को ऐसा लगता है कि इसके पहले की काव्य भाषा आज के अनुभवों को लिपिबद्ध करने में असमर्थ हैं. इस युग में द्विवेदी युग की शुष्क इतिवृत्तात्मक भाषा के स्थान पर कोमल एवं सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने वाली काव्य भाषा का निर्माण किया गया. काव्य भाषा की इस मनः स्थिति एवं प्रकृति का कारण उस युग की काव्य सर्जना की परिस्थितियों में खोजा जा सकता है. भाषा निर्माण की चर्चा के प्रसंगों में प्रसाद ने " शब्दों के व्यवहार " पर बल दिया.[9] इसके साथ ही शब्द शक्तियों की अनेक विशेषताओं को भी आवश्यक बतलाया ।[10] निराला ने भी भाषा के इस आदर्श को स्वीकार करते हुए " भाव संपन्न भाषा " को प्रस्तावित किया ।[11]

निराला ऐसे समय में हिन्दी काव्य रचना में प्रवृत्त हुए थे जब खड़ी बोली का काव्य अपने शैशव की स्थिति में था. हिन्दी काव्य की भावात्मक क्षमताएँ तब तक विकसित नहीं हुई थीं. [12] भाषा को उसकी संवेदना के स्तर पर ग्रहण करने की जितनी शक्ति इन छायावादी कवियों में मिलती है उतनी द्विवेदी युग के किसी कवि ने नहीं. यद्यपि छायावादी कवियों ने भी संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया हैं तथापि उन्होंने द्विवेदी युगीन कवियों की तरह भारी भरकम आनुप्रासिक योजना वाले शब्दों का प्रयोग नहीं किया.

मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि को काव्य भाषा की इसी अनुपयुक्तता के कारण इतिवृत्तात्मक माना गया है. इसमें न तो सुंदर चित्र विधान की क्षमता थी और न ही संवेदना का तरल स्पर्श ही. काव्य भाषा के रूप में खड़ी बोली का वास्तविक परिष्कार प्रसाद, निराला जैसे कवियों में ही पाया जाता है. माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान, जैसे परवर्ती कवियों ने भी प्रसाद, निराला की काव्य-भाषा को ही आगे बढ़ाया किन्तु उसे और भी परिष्कृत एवं सरल रूप दिया. इन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-2 तद्भव, देशज एवं विदेश शब्दों को भी अपनी भाषा में स्थान दिया है. परन्तु ये सब शब्द अनगढ़े एवं अलग से नहीं दिखते. वियोगी हरि एवं द्वारिका प्रसाद मिश्र ने तो रीतिकाल से चली आ रही ब्रज भाषा का प्रयोग वीर रस की कृतियों के लिए किया है जो अस्वभाविक दृष्टिगोचर नहीं होती ।

सोहनलाल द्विवेदी एवं श्यामलाल गुप्त पार्षद जैसे कवियों ने तो सरल एवं स्पष्ट भाषा में राष्ट्रीय कविताओं की रचना की है. भाषा का निर्माण एवं संस्कार करते हुए दिनकर, सुमन जी जैसे कवियों ने जो प्रमुख कार्य किया वह भाषा को परिष्कृत एवं नवीन विषयों

के अनुकूल बनाने का है. इनके मन में शब्दों के प्रति एक भावना थी और इसी भावना के फलस्वरूप ये कवि इनका प्रयोग करते हैं. इस प्रयोग में सक्षम दीखने वाले शब्दों के स्थान पर कवियों ने यद्यपि प्रचलित बोलियों के शब्द अपना लिए हैं अथवा नये शब्दों का प्रयोग किया है, तथापि प्रत्येक शब्द को तराशे बिना प्रयोग कर देना इनकी प्रकृति नहीं. श्यामनारायण पाण्डेय जैसे वीर रस के प्रमुख कवि ने यत्र-तत्र उर्दू के भी प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है. इनके अतिरिक्त मलखानसिंह सिसौदिया , कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, श्री कृष्ण सरल, आनंद कुमार, विश्वनाथ पाठक, जीवन शुक्ल, मोहनलाल महतो " वियोगी ", श्यामनारायण प्रसाद, लक्ष्मी नारायण कुशवाहा आदि कवियों ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली के साथ-2 तद्भव एवं देशज एवं उर्दू-फारसी के शब्दों को भी लिया है. शब्दों के समस्त प्रयोजन में इन कवियों में असंयम या हल्का पन नहीं दिखता, उनकी शब्द-योजना में भावोत्कर्ष की शक्ति है. इसके अतिरिक्त प्राय: अधिकांश कृतियों में रस-तत्व की प्रमुखता और उसी के अनुरूप भाषा की योजना करने की क्षमता है. विभिन्न काव्यान्दोलनों से मिलकर निर्मित हुई वीर काव्य धारा की कविता का शब्द संसार बहुत व्यापक हैं. हिन्दी के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के अतिरिक्त उर्दू-फारसी के शब्द बड़ी संख्या में मिलते हैं. इस शब्द योजना को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है--

तत्सम ::--

1-- विषयोत्कृष्टता, मृगलोचनी, कस्मैदेवाय, दक्षारि, आह्लादित, बुभुक्षितों, अश्रु, वितृष्णा, ऋतु, बलिष्ठ, पौरुष, अभय, भृकुटि, महामहिम, अपराजेय, उज्ज्वलता, वज्र-वृष्टि, प्रणय, जागृति, ज्याति, शोणित, कुंतल, कृपाण, वेदिका, दक्षादि, कपि, कुत्सित, वाक्वीर, धूमज्वाल, दारुसार, द्रवन्ती, कुण्डकीट, अर्जुनी,

कलिंगा, अरिमद्र, उजुक, चक्ररेणु, शर्शरीक, उरुशर्म, ज्योतिर्धर, तमिस्र, अहिनिश, अर्चिपुंज, घूर्णि, दन्तुद्दित, प्रकम्पित, वपु, विभ्राट, व्यवहार, खग्रास, सन्दीपित, उत्क्रान्ति, दृग, कोटि, मर्मज्ञ, शर, महीतल, शीश, वेणु, सुरभि, गज, प्रभा, महिषी, वज्र-भुष्ठियों, व्यग्र, वाणपरुह, काराध्यक्ष, शैख, इतिवृत्ति, वज्र, मदमत्त, त्रिकाल, असूर्यम्-पश्याओं, क्षणदाएँ, मध्याह्न, संकटमय, मही, मृदुल, पदरज, तरुनिशि, ग्रीवा, आम्र-मंजरी, श्वेतोत्पल, चतुर्दिक, भ्रमर, मरीचि, दिगम्बर, कुंदन, स्वर्ण, परिवर्तक, शर, अवर्ज्य, इत्यादि...

वीर काव्यधारा के कवियों द्वारा प्रयुक्त किये गये उपर्युक्त तत्सम शब्द अधिकांशत: हिन्दी में खटकते नहीं हैं, परन्तु विषयोत्कृष्टता, कस्मैदेवाय, दक्षारि, बुभुक्षितों, स्वर्मज्वाल, अर्जुनी, शर्शरीक, अर्जुनी, असूर्यम्पश्याओं आदि ऐसे शब्द हैं जो अधिक प्रचलित नहीं हैं और हिन्दी की अपनी निजी प्रकृति से दूर जान पड़ने के कारण खटकते हैं ।

तद्भव – निठुर, सपना, ब्याह, सुहाग, नैन, छाँह, हिया, पिया, लकुटी, आंखड़िया, किसरी, निरी, बिराने, बाट जोहना, ओट, सिन्दोसी, मुँह अँधियारे, रुलाय, कागद, पसीजा, उठना, आपुन, निहाल, बैरानी, नाभी, बूझना, चहुँ, अलोक, चकचौंधी, झटिका, नेत, सिखना, उलसना, बमकना, अंगोछे, छलघात, डुब्बी, निराले, पहल, टूटना, फागुन, ऊगन, दूबों, सरग, बे बसती, लुटिया डोरी, थाती, कौंचिचनी, नेह, गलबहियाँ, कंथा, उलीचा, खौंदी, ठूंठ, ठठरी, अरगनी, छाजन, रोचना, शत्र, अरौने, होले, मंजे, घुटटी, कुठार, पचाते, भोंपू, ठौर, अचिंता, सुरही, लैरू,

कावा, पामरता, चुवाऊँ, वीरसू, चलित, रडँरोने, साँय साँय फुस-फुस, नाहर, पिसान, हेलकर, गोहुवन, डाँडों, कोदो का पोरा, मिनकता, आँजन से आँजी, कांडारी, चढ़ौती, बक्खल, उलू, दाम, बेर, आरत, जुड़ना, छोटे, परवारना, संदेशा, टिकुली, डंगर, कछोटा, खड्ड, धक्कापेल, सिमय हुलस अक चार चिनार, शालि, ऐंठना, बयरिया, हाट-बाट, पहरुओं के मचान, छिगुनिया, कढ़ना, चौकसी, कोटिन कपूतन, पछाड़, मारग भूल्यौ, गरे आये, गरीब के, दशा लखि सो तेहि झोंक दियो न दया हिय हूल्यो, साजि, फूल्यो, झिर, कछनी, धरनी, संजीवन, चना- चबेनी, बिछियों, दुरावों, निहारो, खपरैलों, बधुओं, छूंछे टेंट.

देशज :-

अोदी, डगारी, डौल, कौंचना, फरफन्द, ऊबड़ खाबड़, बीजुरी, बरजोरी, संगोते, राउर, बरजना, बिगाने, झाड़-झंखाड़, नगीच, बहिया, बुढ़ौती, छमछैयां, झँझबाती ।

इन कवियों द्वारा प्रयुक्त उपर्युक्त तद्भव प्राय: स्वाभाविक पदावली के अंग है, परन्तु कुछ शब्दों के कारण इनकी भाषा में ग्राम्यत्व झलकता है जैसे -- सूलाय, न बे वसवती, गलबहियाँ, अर्राने, होले, मंजे, पामरता, कावा, चुवाऊँ, रँडरोने, गोहुवन, कोदो का पोरा, आँजन से आँजी, कांडारी, छिगुनिया, गरे आये, बिछियों, दूरावों, छूंछे टेंट आदि श्रीकृष्ण सरल द्वारा प्रयुक्त होले एवं मंजे जैसे शब्द पंजाबी वातावरण को प्रयुक्त करने के कारण आये हैं वहीं मलखान सिंह द्वारा प्रयुक्त सियम हुलस अक चार चिनार जैसे शब्द काश्मीरी वातावरण की सृष्टि के लिए प्रयुक्त हुए हैं. ऐसे प्रयोग भाषा-प्रयोग की व्यापकता के परिचायक हैं और इनकी

संख्या इतनी सीमित है कि उसके कारण अस्वाभाविकता नहीं आने पायी है ।

उर्दू और फारसी :-

आबाद, जीस्त, अफसोस, आदमीयत, कीमत, परवाज, तूफां, पैमाना, रुझान, तूफान, बेतुका, गर्क-फर्क, दुआएँ, आह, दर, जँचे, खाक, अरमान, तराने, अन्देशा, पर्दा, यारी, हरदम, नजदीक, मुसाफिर, तमाशा, मंजिल, बेघर, हस्ती, मिजराबे, कैदी, दुश्वार, फैज-फकीर, बेहोशी, गजी, मशगूल, तपिश, सिरनामा, गनीमत, इज़ारा, सर्द, लासानी, कबूलत, महबूब, न्याज उल्हाह, दरोगा, इल्लिल्लाह, नवास, बेदाग, नुसखा, दिलवर, बेजाना, नाविस, इरादें, शौकीन, नजरों, गुनाह, शूलियाँ, मुर्दों, गरीब, जलसा, महफल, ताकत, लखनवी, नमाज, अज़ान, दीनो ईमान, कुव्वत, जुरअत, कीमत, मसौदा, जनाजा, जंजीर, नज़र, जमाने, जम्हाई, जर्जर, फौलादी, जार, तूफान, गुलामी, कायर, मुहम्मद, शमशीर, अलमस्त, किस्मत, मर्सिया, सीजर, दंगे, रंगोआब, शराबो प्याले, फारस, अशिष्ट, हुज़ूर, फरमाएँ, मुआफ खता, जबादराजी, गुलसितां, शहीद, गुर्राते, मुश्किल, फ्हफिल, इन्कलाब, मर्दाना, लानत, तमाचा, शहदत, शाहबलूतों, हव्वाखातून, वहशत, असलियत, जरवीखा, फसादों, खिदमत, रोबदाब, रहमदिली, हौसले, जनवासे, शहजोर, जवाँमर्द, जाँबाज, यकीन, जमात, खंजर, अल्ला अल्ला, मदिरा, तेग तबर.

अंग्रेजी

कैबिनेट, डिमोक्रेसी, सोशालिस्ट, कम्युनिस्ट, स्लीपर, सिनेमा, रेडियम, हिटलर, वार्डर, आर्डर, बाल डान्स, पार्लिमेंट, रीफार्म एक्ट, ब्रिटिश, प्लैटिनम, शेड, बैरा, कैपीटालिस्ट,

प्रोग्रेसिव, डिक्टेटर, टेरियर, पोएट, फर्म, फायरमैन, सैंचुरियन, हिटलर, ब्रिटानिया, फैशन, बैलट, रीडिंग, लेडी आदि.

उपर्युक्त उर्दू- अंग्रेजी शब्दावली की प्रचुरता यह सिद्ध करती है कि ये कवि कविता की भाषा को जन- जीवन के काफी निकट लाना चाहता है ।

## लोकोक्ति- मुहावरों का प्रयोग

आधुनिक वीर काव्य से सम्बन्धित कवियों ने जहाँ अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों के साथ-साथ उर्दू - फारसी एवं अंग्रेजी जैसे विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ अपनी भाषा को लोकोक्तियों एवं मुहावरों से जीवन्त, समृद्ध एवं प्राणवान् भी बनाया है. लोकोक्तियों का प्रयोग इस युग की भाषा में मुहावरों की अपेक्षा कम हुआ है. ये मुहावरों और लोकोक्तियाँ प्रौढ़ भाषा के सहज गुण हैं. भाषा की कसावट, शक्तिमत्ता, लाक्षणिकता और प्रभावपूर्णता के लिए उनका प्रचुर प्रयोग अपेक्षित है, किन्तु हिन्दी में उनका प्रयोग ~~ब~~ बहुत कम हुआ है. सूर, तुलसी, बिहारी और घनानन्द के अतिरिक्त शायद और कोई उस दिशा में सफल नहीं हो सका. लोकोक्तियों में प्रभाव सबसे अधिक होता है, क्योंकि जन मानस के साथ इनका दीर्घ सम्पर्क है. इनमें प्रयुक्त अर्थ जन-जीवन की स्थापित मान्यताओं का रूप ले चुके हैं. भारतेन्दु युग के गद्य और द्विवेदी युग के काव्य में मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सौन्दर्य बहुत निखरा है. गुप्त, दिनकर, प्रसाद, निराला, श्यामलाल गुप्त " पार्षद ", सोहनलाल द्विवेदी, मलखान सिंह सिसौदिया, पं० मोहनलाल महतो " वियोगी -", श्यामनारायण पाण्डेय आदि प्रभृति कवियों की रचनाओं में यद्यपि मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अल्प ही है किन्तु जहाँ भी

ये आये हैं वे भाषा की सहज शक्ति एवं युक्तियुक्तता के साथ आये हैं. स्वाभाविक रूप में व्यवहृत होने के कारण उनके द्वारा भावाभिव्यक्ति का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है. निम्नांकित उदाहरणों में मुहावरें द्रष्टव्य हैं--

1. नाकों चने चबाने पड़े थे और फिर भी
निष्कृति के हेतु पड़े दाँतों तृण दाबने । [13]

2 नहीं-नहीं, मेरे अनुजों को मुझसे भी लोहा लेना [14]

3 धर कर चरण विजित शृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं
अपनी उंगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं ।

पड़ी समय से होड़ खींच मत तलवों से कांटे रूककर
फूँक-फूँक चलती न जवानी चोटों से बचकर झुककर । " [15]
4 अभय बैठ ज्वालामुखियों पर अपना मंत्र जगाते है
ये हैं वे जिनके जादू पानी में आग लगाते हैं । [16]

उपर्युक्त रेखांकित उदाहरणों में मुहावरों के प्रयोग के कारण जिस अर्थवत्ता का सन्निवेश हुआ है, वह उनके स्थान पर शब्द प्रयोग से संभव नहीं है. निराला जी के काव्य में ऐसे प्रयोग प्रायः कम हैं किन्तु " घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते " [17] में अभिव्यक्ति शक्ति विद्यमान है. जन भाषा के प्रयोग के धनी श्री श्यामलाल गुप्त पार्षद तथा सोहनलाल द्विवेदी के निम्नलिखित प्रयोगों " पौराणिक संदर्भों " के साथ इनका प्रयोग मनोज्ञ ही कहा जायगा--

1 देख निठुरता निर्दयता सब के दिल टूटे
दंग हुआ दशशीश, कंस के छक्के छूटे " [18]

2. इतना भी क्यों हम न आह भी मुँह पर लायें ।
सहें वार पर वार आँख में आँस न आयें ।। [19]

3. थोथों पर कुरबान हुए !
हा भाग हमारे फूट गये । [20]

4. आँसू पीकर मुस्काता है वीरों का क्रम [21]

शब्द चयन के समान श्यामनारायण पाण्डेय तथा मलखान सिंह सिसौदिया ने भी मुहावरों को अपेक्षाकृत कम स्थान दिया है किन्तु उनका सर्वथा अभाव नहीं है--

1. यदि आँख सिंहनी पर है,
जम्बुक ने आज गड़ायी है [22]

2. क्यों दूध कलंकित करते
क्षत्राणी के सीने का । [23]

3. इसी घड़ी में फासिस्तों की
कर देनी है नींद हराम [24]

इसी प्रकार,

एक बार पीसकर दाँत महायोद्धा ने
मारा झटका तो छिन्न भिन्न हो के श्रृंखला
छिटक गयी यों मानो ओले पड़े नभ से ।
गरजा सरोष महाबाहु- बल विक्रमी [25]

आ रहा हूँ दिल्ली से वहाँ का कुछ और ही
देखा- सुना हाल मैंने- तोते उड़े हाथ के । [26]

श्री मोहनलाल महतो वियोगी की उपर्युक्त पंक्तियों में " पीसकर दाँत " के प्रयोग द्वारा नायक पृथ्वीराज चौहान के अनुभावों का सजीव चित्रण है. - ओले पड़े नभ से " भय का वातावरण बड़ी सार्थकता के साथ स्थापित हुआ है और मुहम्मद गोरी के सैनिक द्वारा दिल्ली की नवजागृति का समाचार सुनकर " तोते उड़े हाथ के " के प्रयोग द्वारा उनकी मनःस्थिति का सुन्दर चित्रण उपस्थित हो जाता है ।

इन कवियों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, शिवमंगल सिंह सुमन, गुरुभक्त सिंह भक्त, लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि कवियों ने भी मुहावरों का प्रयोग सर्वाधिक किया है यथा ---

1. अच्छी याद मुझे भी आई रोज काफिले जाते थे,
है चिराग तले अंधेरा जो यह याद न आते थे ।

जाकर हममे से कितने ही जिनका यहाँ बुरा था हाल,

भारत से थोड़े ही दिन में लौटे होकर माला माल ।[27]

2. हमला करने वाले के थे होश ठिकाने आये ।[28]

3. वापिस जाओ ! अन्यथा ढेर हो जाओगे

..... तुम सदा सदा को धरती पर सो जाओगे ।[28]

उपर्युक्त उद्धरणों में क्रमांक 2 और 3 के प्रयोग जितने सशक्त है उतने प्रथम के नहीं. इसी प्रकार----

अब उठ आज दाँत कर खट्टे,[30] चार दिनों की सिर्फ चाँदनी,[31]

जा तुझको न डूब मरने को, को भी चुल्लू भर पानी[32]

जड़ और चेतन में हुई क्षण एक आँखे चार भी[33] आदि प्रयोग भी सुन्दर हुए हैं.

लक्ष्मीनारायण कुशवाहा ने निम्नलिखित उद्धरण में जो प्रयोग किये हैं वे अत्यधिक सशक्त हैं---

मुक्ति-बहुरिया पाकर जननी, बाग-बाग हो जाये ।
शुभ महूर्त आ जाये, जन-जन फूला नहीं समाये ।[34]

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि इन कवियों में लोकोक्तियों का प्रयोग प्राय: नहीं के बराबर किया है. इन्होंने मुहावरों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है. दिये गये उद्धरणों से स्पष्ट है कि मुहावरों के परिधान में उनकी अनुभूति और भी प्रखर तथा तीव्र हो उठी है. ये मुहावरें उनकी अनुभूति के सहज अंग हैं ये आरोपित या बलात् समाविष्ट किये गये नहीं प्रतीत होते ।

## मूल्यांकन

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति या प्रमुख अनिवार्य तथा सशक्त माध्यम है. हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों की भाषा अपने युग के परिवेशगत दबाव को पूर्ण रूप से व्यक्त करती है. इन समस्त नवीन कवियों की पूरी की पूरी पीढ़ी एक नयी भाषा के तलाशने की धुन में है. इस युग की कविता के मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ सहज तथा गत्यात्मक हैं. इस समय की भाषा में जन साधारण के करीब आने की कोशिश है ।

हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों का शब्द संसार बहुत व्यापक है. हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, देशज, तद्भव शब्दों का बहुत बड़ा भण्डार इन कविताओं में विद्यमान है. इसमें मिलने वालाजन भाषा का प्रयोग उसकी शक्ति को बढ़ाता है. लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे इस भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं. आधुनिक काव्य के पर्यवेक्षण से प्रतीत होता है कि " तत्सम " शब्दावली के प्रयोग की दिशा में आधुनिक कवि सचेत हैं. संस्कृत शब्दों ने उनको आकृष्ट किया है. कवि हरिऔध ने भी एक स्थान पर कहा है....

" संस्कृत भाषा में, उसके शब्दों में, उसके समासों में कैसा बल है, वह कितनी मीठी है, उसमें कितनी लोच है, कितना रस है, कितनी लचक है, कितनी गुंजायश है, कितना लुभावना है, उसमें कितना भाव है, कितना आनंद है और कितना रंग रहस्य है, मैं उसे कैसे बतलाऊँ ? उसमें क्या नहीं सब कुछ है. उसमें ऐसे- ऐसे पदार्थ हैं कि उनके बिना हम जी नहीं सकते, पनप नहीं सकते और न फल-फूल सकते हैं. उससे मुँह मोड़कर हिन्दी भाषा के पास क्या रह जायेगा ? वह कंगाल बन जायेगी । " [35]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त भी इस शैली के समर्थक हैं । [36]

सामान्यतः इसी विचारधारा ने अधिकांश कवियों को प्रेरित किया है, किन्तु यह भी संभव है कि इनमें से कुछ कवियों को पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना ने भी विरल प्रयोगगत संस्कृत शब्दों की ओर उन्मुख किया हो. इन काव्यों में बहुत से संस्कृत शब्द तो ऐसे हैं जिनको कोष के साथ ही समझा जा सकता है. " अंगराज " महाकाव्य की पंक्ति में ऐसे शब्दों की भरमार है जिनका बोध पाठक के लिए समस्या बन गया होता यदि पाद टिप्पणियों में उनके अर्थ न दिये गये होते. " अंगराज " महाकाव्य में प्रयुक्त तत्सम शब्द वाक्वीर,

स्रमज्वाल, दारुसार, द्रवन्ती, कुण्डकीट, अटटायमान, शरारु, कलिंग, दोडंग, कंधर, उलूक (इन्द्र), चक्ररेणु, कुसुमाल, वृषस्यन्ती, शर्शरीक आदि . संक्षेप में यह कहना उचित ही होगा कि संस्कृत भाषा ने आधुनिक हिन्दी कवियों को इस प्रकार प्रभावित किया कि वे तत्सम शब्दों, कहीं पदों, कहीं कारकों, कहीं क्रियाओं, समासों, संधियों, प्रत्ययों का तद्रूप में प्रयोग किए बिना नहीं रह सकते. आधुनिक काव्यों की भाषा पर जहाँ एक ओर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव है, वहाँ नये शब्दों के भरने की प्रवृत्ति भी कम नहीं है. कुल मिलाकर इस युग की भाषा अपने युग तथा परिवेश के अनुरूप है ।

## अलंकार योजना

अलंकार भावोत्कर्ष के साधन है. प्राय: भावावेश के क्षणों में कवि की भाव विद्ध चेतना अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्दों को समेट नहीं पाती है. ऐसी विवशता की स्थिति में कवि की आहत चेतना अनेक ऐसे माध्यमों का अनुसंधान करती है जो उसकी भाषा को अतिरिक्त अर्थवत्ता से सम्पन्न कर सके. अलंकार भी ऐसा ही माध्यम है. आचार्य दण्डी ने इसे काव्य सौन्दर्य उत्पन्न करने वाले धर्म माना है.[37] वास्तव में अलंकारों का अलंकारत्व इसी में है कि वे काव्य में रस एवं भाव के आश्रित होकर स्थिर रहते हैं.[38] भारतीय काव्य परंपरा में प्राचीन काल से ही अलंकारों का महत्व प्रतिष्ठित रहा है. रीतिकालीन काव्य की प्रधान चेतना अलंकृति रही है. आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त विशेषण विपर्यय तथा मानवीकरण जैसे यूरोपीय काव्य परंपरा से प्राप्त अलंकारों का प्रयोग करके शिल्प के नये माध्यमों का समायोजन किया गया है . आलोच्य काव्यों में शब्द एवं अर्थ के

माध्यम से अलंकार- विधान के परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त उक्त नये अलंकारों का भी यथास्थान प्रयोग किया गया है ।

अलंकारों के प्रयोग के संबंध में निश्चित रूप से यह कहना कि कवि की दृष्टि पहले भाव पर रहती है या अलंकार पर, दुष्कर है, किन्तु शब्दालंकारों के प्रयोग के समय कवि निश्चित ही थोड़ा सजग रहता है. अभ्यास प्रयोग को सुन्दर एवं स्वाभाविक बनाने में सहायता करता है. अर्थालंकारों की भाँति शब्दालंकार अनुभूति के धर्म नहीं हो सकते । [39] किन्तु उनके माध्यम से काव्य में नाद-सौन्दर्य उत्पन्न किया जा सकता है.

अधिकांशतः शब्द विषयों के प्रयोग पर ही शब्दालंकारों की उपस्थिति निर्भर रहजी है. नाद- सौन्दर्य उत्पन्न करने में अनुप्रास का प्रमुख योग रहता है. " अनुप्रासों का समावेश वहीं अच्छा लगता है जहाँ वह संगीत को पुष्ट करता है, अन्यत्र वह सहृदयों को खलता है. श्रेष्ठ कवि प्रायः अज्ञात भाव से अनुप्रासों का सन्निवेश करते हैं. उस दशा में अनुप्रास मूल अनुभूति की निरर्थकता के कारण ही अच्छे लगते हैं, वह भी निम्नकोटि के पाठकों को ।" [40] इसकी योजना की सार्थकता इसी में है कि वह भावानुरूप हो. भावानुरूप शब्द सृष्टि की गणना वृत्तियों में की जाती है, जिनमें भाव-नाद में मुखर हो उठता है । [41] " कृष्णायन " एवं " भैरवी " में अनुप्रास की स्वाभाविक एवं हृदयग्राही छटा देखने को मिलती है--

" चकित कपोत करत नहिं कूंजन,
करत न कुट कूट कुक्कुट कूलन । " [42]

एवं

खंड खंड भूखंड , अंड ब्रह्मांड
पिंड नभ में डोले

मेरे मृत्युंजय की टोली
जब माँ की जय जय बोले । " 43

अनुप्रास का यह स्वरूप न केवल स्वाभाविकता की प्रतिष्ठा कर रहा है, वरन् भाषा में सहज आकर्षण भी उत्पन्न कर रहा है .

" झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर ! " 44

उपर्युक्त पंक्तियों में पुनरुक्ति प्रकाश और छेकानुप्रास इन दो अलंकारों का सौष्ठव है ।

अनुप्रास योजना का मनोविज्ञान यही है कि उसमें वर्ण का अनुकरण एक श्रुतिमाधुर्य की सृष्टि करता है और यह अनुमान संभवतः गलत न होगा कि इस उद्देश्य की सिद्धि में वृत्यानुप्रास और छेकानुप्रास की योजना की गयी है. आधुनिक कवियों ने अनुप्रास के महत्व को विस्मृत नहीं कर दिया है,किन्तु नियमबद्ध अनुप्रास के स्थान पर आधुनिक कवि स्वर मैत्री और वर्ण मैत्री की ओर प्रायः अधिक झुके हुए है ।

आधुनिक काव्यों में यमक और श्लेष अलंकारों का प्रयोग बहुलता से नहीं हुआ है क्योंकि ये केवल चमत्कार प्रधान हैं और आज का कवि अलंकारों में चमत्कार मात्र का समर्थक नहीं है. साथ ही इन अलंकारों का प्रयोग बड़ी सतर्कता एवं कुशलता की अपेक्षा रखता है. तनिक सा प्रमाद या जागरूकता का स्खलन सौन्दर्य पैदा करने के स्थान पर खटकने लगता है. यमक वर्णों की आवृत्ति नहीं, वर्ण संघात, वर्ण श्रृंखला अथवा पद की आवृत्ति है. पद सार्थक होने पर शब्द भी होता है, इसलिए कभी-2 शब्द की भी आवृत्ति होती

है, पर सदैव नहीं. इन अलंकारों के अधिकांश सहज न होकर सचेष्ट ही हैं और इनमें सार्थक पदों की ही आवृत्ति मिलती है यथा--

- " होता ज्यों तरंत पात, बोलते तरंत रथ
तैरते तरंत, तुल्य लोहित तरंत में । " 45

तथा

" अविरथयुत अविरतयुत अविरथ अविरथ कर्ण लिए निज अविरथ
प्रतिरथियों की भीमरथी में बना अविरथी सम, अप्रतिरथ ।46

उक्त छन्दों में क्रमशः " तरंत " और " अविरथ " पदों की सार्थक आवृत्ति है ।

शब्दालंकारों में श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्ति प्रकाश,प्रहेलिका और चित्र के नाम प्राचीन परंपरा में अधिक प्रशस्त हैं. किन्तु आधुनिक कवियों ने इनके सायास प्रयोग नहीं किये है. श्लेष एवं वक्रोक्ति के प्रयोगों में कहीं-कहीं कवि की रुचि दृष्टिगोचर होती है. वक्रोक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

" एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है ?
उसने कहा अपर कैसा ? वह उड़ गया सपर है । " 47

निराला जी में शब्दालंकारों में अनुप्रास के पश्चात दूसरा अलंकार " पुनरुक्ति प्रकाश " है. " नव- नव ", " झर-झर ", " पग-पग ", " पवन-पवन ", नयन-नयन ", " तरु-तरु " जैसे शब्दों की आवृत्ति उनमें बहुत मिलती है. प्रवाह एवं लय की रक्षा में इनसे बड़ी सहायता मिलती है. श्यामनारायण पाण्डेय एवं लालधर त्रिपाठी " प्रवासी " में भी यह अलंकार दृष्टिगोचर होता है. यथा----

घनन् घनन् घनन् घनन् जुझार-वाद्य बज उठे !

गनन-मगन-तिमिर पवन-प्रलय-समाज सज उठे ।
प्रलय-प्रवाह था, घटा उमड़ घुमड़ घिरी कहीं,
उड़ीं कहीं भिड़ीं कहीं, बढ़ी कहीं, चढ़ी कहीं । ".[48]

यहाँ घनन घनन, उमड़ घुमड़, उठे-उठे जैसे शब्दों आवृत्ति है जो प्रवाह और लय में सहायक सिद्ध हुई है और इसके साथ ही अद्भुत नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करके युद्धानुरूप वातावरण की सृष्टि भी करती है ।

अर्थालंकारों में उपमालंकार आधार भूत है. आधुनिक कवि उपमा प्रयोग की परम्परा से विप्रकृष्ट नहीं है. यद्यपि इनके मनमें नव्यता की अंगड़ाई दृष्टिगोचर हो रही है, किन्तु वे प्राचीन चली आ रही परंपरा को छोड़ नहीं पाये हैं. उदाहरणार्थ " आर्यावर्त " महाकाव्य में बंदी पृथ्वीराज गोरी के किले में शब्दवेधी बाण मारने जा रहा हैं ।

" पृथ्वीराज दीख पड़े बैठे गजराज पर
जैसे उदयाद्रि पर पूर्ण शशि बैठा हो ।
चमक रही थी बर्छियाँ ज्यों दिव्य तारे हो ,
दिन में विभावरी का दृश्य अनुपम था । " [49]

इसमें कवि ने पृथ्वीराज की गजराज पर बैठने की उपमा उदयाद्रि पर शशि के साथ और बर्छियों की उपमा दिव्य तारों के साथ की है. एक और उदाहरण द्रष्टव्य है--

" नख- दन्त- हीन वृद्ध व्याघ्र सा भयावना
आया जब चारण- सतर्क सभा हो गयी
गान रुका और रुकी वेणु-वीणा मुखरा
मानो देव ग्रीष्म की ज्वालामयीमूर्तिको
सरस बसंत का हृदय थहरा उठा । " [50]

इसकी प्रथम पंक्ति में एक ओर चारण की विवशता तथा अंतिम दो पंक्तियों में राजसभा की घबराहट को क्रमशः उपमा एवं उत्प्रेक्षा के माध्यम में सशक्त अभिव्यक्ति हुई है. ऐसे प्रयोग इस तथ्य का साक्ष्य उपस्थित करते हैं कि अलंकार केवल भावोत्कर्ष ही नहीं करते किन्तु भावों को उचित एवं मनोज्ञ रूपाकार भी प्रदान करते हैं ।

मालोपमा का एक महत्वपूर्ण चित्र इन उदाहरणों में उपस्थित किया गया है --

" दे न सकत प्रजहिं सहारा, मृतक श्वान सम सो भू भारा । [51]
सो जलविरहित जलद-समाना,काष्ठ अंग-सदृश निष्प्राणा

एवं

" जामुन सी गिरी बोटियाँ थीं, टपके सम चहुँदिश गिर टपके
इस तरह धरा पर धड़ गिरते,ज्यों आम उठाने को लपके ।।
शोणित के छलके हुये बूँद,इस भाति झलकते धारों में ।
जाता हो वीर बहूटी-दल,इठलाता हुआ कतारों में ।।
जैसे गोरों के लिए खंग,ऋतु शरद रूप धर आई हो ।
भय से गोरों के मुँह सफेद,ज्यों काँस धवलिया छाई हो ।। [52]

उपमा के उपरान्त रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का ही प्रयोग अधिक हुआ है. दिनकर जी ने " कुरुक्षेत्र " में " रूपक " अलंकार का प्रयोग किया है --

" नर संस्कृति की रण-छिन्न लता पर,
शान्ति सुधा फल दिव्य फलेगा । " [53]

उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग " कृष्णायन ", " आर्यावर्त " " कुरुक्षेत्र " एवं " जौहर " काव्यों में हुआ है. उत्प्रेक्षा की योजना

ऐसे उदाहरणों में कवि की अनुपम कल्पना शक्ति का परिचय देती है ----

" रानी पहने थी पीत चीनांशुक उसमें
शोभती थी जर की किनारी नेत्र-रंजिनी ।
मानो शची रानी घिरी सोने की घटाओं से
और लिपटी हो जलधर धौत-दामिनी । " 54

यहाँ प्रस्तुत पीत चीनांशुक और जर की किनारी में अप्रस्तुत सोने की घटा और दामिनी की सम्भावना कितनी मनमोहक है. एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है--

" मृदुल उस पर एक आसन था बिछा, मणि रतन के चमचमाते तार थे
वीर राणा थे खड़े उस पर अभय,लोचनों से चू रहे अंगार थे । 56

रूपकातिशयोक्ति अलंकार भी इन कवियों का अतिप्रिय अलंकार है. इस अलंकार में केवल उपमानों के द्वारा ही उपमेयों का वर्णन किया जाता है और ये कवि अपनी अधिकांश कविताओं में उपमेय के स्थान पर केवल उपमान से ही काम निकालना अधिक अच्छा समझते हैं. इसके दो लाभ होते हैं- एक तो काव्य में थोड़े से शब्दों से ही काम चल जाता है, दूसरे लाक्षणिकता और व्यंजना का समावेश सुगमता से हो जाता है. इनके अतिरिक्त उससे प्रतीक योजना को भी प्रोत्साहन मिलता है यथा--

" बात पूछने की विवेक से जमी वीरता जाती,
पी जाती अपमान पतित हो, अपना तेज गंवाती । " 56

अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग कृष्णायन में भी अनेक स्थलों पर हुआ है ---

" व्योम- विचुम्बित नृप-भवन,राजतध्वज अभिराम ।

फहरत,प्रेरत भानुरथ, लहत अरुण विश्राम । " 57

व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग " रश्मिरथी " एवं " क्वासि " में दृष्टिगोचर होता है --

" किन्तु आपकी कीर्ति चाँदनी फीकी हो जायेगी
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी । " 58

देवराज इन्द्र कर्ण की कीर्ति को निष्कलंक चन्द्र कह कर उसे उपमान से श्रेष्ठतर रूप में स्थापित करते हैं.

एवं

" देख खंजनों को,क्यों प्रिय के लोचन की सुधि हिय में जागे ।
ये चंचल क्या टिक पायेंगे उनके उन नयनों के आगे । " 59

इन बहुत से अलंकारों के अतिरिक्त पर्यायोक्ति तथा अपह्नुति अलंकार के कुछ प्रयोग मिलते हैं जिनके एक- एक उदाहरण यहाँ पर्याप्त है --

पर्यायोक्ति अलंकार -

जहाँ अभिप्रेतार्थ की अभिव्यक्ति प्रकारान्तर से की जाती है वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है. " रश्मिरथी " में इसका प्रयोग बहुलता से हुआ है --

" एक बाज का पंख तोड़ कर करना अभय अपर को,
सुर को शोभे भले, नीति यह नहीं शोभती नर को ।
यह तो निहत शरभ पर चढ़ आखेटक पद पाना है,
जहर पिला मृगपति को उस पर पौरुष दिखलाना है । " 60

अपह्नुति अलंकार -

" भरी सभा में लाज द्रौपदी की न गई थी लूटी-
वह तो यही कराल आग थी निर्भय होकर फूटी " 61

परम्परागत अलंकारों के प्रयोग के अतिरिक्त मानवीकरण और विशेषण विपर्यय जैसे नये अलंकार का भी यत्किंचित प्रयोग आधुनिक वीर काव्यों में दृष्टिगोचर होता है. मानवीकरण भी अभिव्यक्ति को कलापूर्ण बनाने की एक उत्तम युक्ति है. इसमें निर्जीव पदार्थों , अमूर्त भावनाओं अथवा अवयव विशेष पर मानवीय गुणों का आरोप किया जातत है. जिससे उनकी संवेदनशीलता में पर्याप्त वृद्धि होती है. इसके उदाहरण आधुनिक काव्यों में मिल जाते है यथा ----

" अंधकार- गज भगा गहन विपिन में
दिनपति प्रकटा सरोष मृगराज- सा
केसर-सी किरणें विकीर्ण हुई नभ में ।
भाग के मृगांक छिपा अस्ताचल ओट में
भय था कि मृगचिह्न देख कहीं केसरी
टूटे मत-भाग गयी रजती किरात सी
आँचमें भरके नखत- गुंजा भय से । " 62

दिनपति में कुछ उष्णता और तीक्ष्णता का समावेश हो रहा है. इसमें उन्हें सरोष मृगराज की उपमा दी गयी है फिर उनके सामने अंधकार रूपी गज कैसे ठहर सकता है. यहाँ अंधकार एवं सूर्य का मानवीकरण केया गया है. इसी प्रकार

" नभ से किरन नर्तकी उतरी, नाची पद्म-सदन में ।
विहगों ने मधु ध्वनि के घुँघरू, बाँधे चारु चरन में ।।
नृत्य बोल चातक ने बोले, बने मोर प्रिय संगी ।
मधुर मधुर झिल्लीक-मण्डली, बजा उठी सारंगी ।। " 63

उपर्युक्त पंक्तियों में किरण का मानवीकरण किया गया है.

मानवीकरण की तरह ही विशेषण- विपर्यय भी इन कवियों का प्रिय अलंकार हैं. लाक्षणिक प्रयोगों के भीतर अंग्रेजी में यह एक अलंकार है इसलिए अलंकार रूप में इसका विचार कर लेना समीचीन है. यथा--

" फिर हेमंत आया- व्यग्र हुई वसुधा
पीले पड़े पत्ते, आया शिशिर सिहरता । " [64]

शिशिर सिहरता नहीं किन्तु शिशिर से लोग सिहरते हैं. यहाँ सिहरता एक सिहरते मनुष्य का चित्र उपस्थित करता है. इस विशेषण- विपर्यय अलंकार से भाषा की चित्रमयता एवं अर्थव्यंजकता की श्रीवृद्धि हो रही है. इसी प्रकार...

" आपमें हमारा काम आज मूर्तिमन्त है ।
चलिए न, नन्दन में उत्सुक वसन्त है । " [65]

यहाँ वसन्त की उत्सुकता का उल्लेख किया गया है. पर वास्तव में वसन्त उत्सुक नहीं है वरन् वसंत के प्रभाव से उल्लसित नंदनवन का चिर उपयोगी अप्सरा समान नए इन्द्र के सम्पर्क के लिए उत्कंठित है ।

ध्वन्यर्थव्यंजना भी नये अलंकार के रूप में बहुचर्चित है. इसमें ध्वन्यर्थव्यंजक शब्दों के बल पर ही प्रस्तुत प्रसंग और अर्थ का ज्ञान कराके एक चित्र अंकित किया जाता है. भाव एवं भाषा का सामंजस्य और स्वरैक्य मिलकर काव्य के आंतरिक गुणों से परिचित करा देते हैं. इनमें अनुप्रास एवं यमक का आभास होता है, पर ध्यान इसकी ओर न जाकर ध्वन्यर्थव्यंजना की ओर जाता है, ध्वनि से ही भावबोध हो जाता है. " बादल राग " की प्रारम्भिक पंक्तियों से बादल का रूप एवं उसके कार्यों की अनुभूति केवल ध्वन्यर्थव्यंजक शब्दों से होती है ---

" झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर ।

राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर
झर-झर-झर निर्झर गिरि सर में
सरित, तड़ित गति चकित पवन में
मन में, विजन,गहन-कानन में
आनन-आनन में रव घोर कठोर -
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर । "[66]

यहाँ
" परुष शब्दावली का चमत्कार है ।

" आर्यावर्त " में भी इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं. अन्य अलंकारों में उल्लेख भी इन कवियों का प्रिय अलंकार है जिसमें वे किसी वस्तु को कितने ही रूपों में देखते या संबोधित करते हैं यथा--

" घनघोष समझ मयूर लगे कूकने
समझा गजेन्द्र ने दहाड़ मृगराज की ।
सागर ने समझी प्रभंजन की गर्जना,
पर्वतों ने समझी कड़क महावज्र की ।
गंगाधर चौंके जयघोष को समझ के
गंगा आ रही हैं ब्रह्मलोक से गरजती । "[67]

जनक के धनुष यज्ञ में राम को राजाओं ने भिन्न-2 भावनाओं को लेकर देखा था, वैसेही भारतेश्वरी संयोगिता को दुर्ग में मंत्रीगण देखते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों में अलंकार प्रयोग की दो धाराएँ आ मिली हैं - एक धारा परंपरागत है जिसपर संस्कृत साहित्य का प्रभाव है दूसरी नवीन एवं मौलिक है जिसमें नवीन उपमान एवं नवीन अलंकारों की योजना है. हिन्दी के आधुनिक वीर

काव्यों की अलंकार योजना संस्कृत साहित्य से प्रभावित होते हुए भी उसमें नवीन अलंकारों का मनोरम समावेश हुआ है ।

## बिम्ब

बिम्ब शब्द अंग्रेजी के " इमेज " का पर्याय है इसका अर्थ है- आकृति, प्रतिमा एवं रूप इत्यादि. किसी भी जड़ या चेतन पदार्थ का मानस-चित्र अथवा कल्पना-चित्र ही बिम्ब कहलाता है. बिम्ब-विधान काव्य-शिल्प का आधुनिक प्रयोग है जो पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की देन कहा जा सकता है. काव्य- बिम्ब को टी० ई० ह्यूम, एजरा पाउंड, रिचर्ड एलडिंगटन तथा सिसल डे लेविस ने सिद्धान्त रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है. सिसिल डे लेविस ने बिम्ब को परिभाषित करते हुए कहा है...

" यह एक ऐसा ऐन्द्रिय शब्द चित्र है जो कुछ अंशों तक अलंकारपूर्ण अथवा लाक्षणिक होता है- जिसके संदर्भ में मानवीय संवेदनाएँ निहित रहती हैं तथा जो पाठक के मन में विशिष्ट रागात्मक भाव उद्दीप्त करता है । " [68]

बिम्ब काव्य को संवेदना प्रदान करता है. इसके अतिरिक्त इनके माध्यम से कवि वस्तु घटना,व्यापार,गुण,विचार,भाव आदि को साकार करता है . डा० भगीरथ मिश्र ने बिम्ब योजना पर विचार करते हुए कहा है --

" बिम्ब अप्रस्तुत की मानसिक या काल्पनिक सृष्टि या रूप रचना है. काव्य अप्रस्तुत वस्तुओं का कल्पनागत वर्णन करता है अतः वह मूलता बिम्ब योजना की क्रिया में संलग्न रहता है. अतः बिम्ब-योजना की क्रिया कवि का प्रधान कार्य होने से काव्य की कसौटी के रूप में स्वीकार की जा सकती है. बिम्ब के मुख्य चार कार्य चार

प्रकार के हैं -- काव्यार्थ को पूर्णतया स्पष्ट करना, वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष करना, रूप या गुण को हृदयंगम कराना और भाव को संप्रेषित या उत्तेजित करना । " [69]

बिम्ब के बारे में बहुत बड़ा भ्रम यह है कि यह अभिव्यक्ति का बाह्य या ऊपरी साधन मात्र है. वास्तव में बिम्ब शिल्प से संबंधित होते हुए भी काव्य रचना की आंतरिकता से बहुत गहरे जुड़ा हुआ है. अतः बिम्बों का वर्गीकरण इतनी सरलता एवं स्थूलता से नहीं किया जा सकता. प्रस्तुत अध्याय में हम बिम्बों के वर्गीकरण में न पड़कर आलोच्य युग के कवियों द्वारा प्रयुक्त किये गये प्रमुख बिम्बों का ही क्रमशः अनुशीलन करेंगे ।

### ऐन्द्रिय बिम्ब

### (अ) दृश्य बिम्ब या दृश्यवस्तु बिंब

जहाँ किसी वस्तु को स्पष्ट करने के लिए ऐसे बिम्बों की योजना की जाती है, जो उस वस्तु को हमारे सामने पूर्णतः प्रत्यक्ष कर देते हैं. जैसे --

> " झन-झन-झन-झन-झन झनन झनन
> मेरी पायल झनकार रही तलवारों की झनकारों में,
> अपनी आगमनी बजा रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में
> मैं अहंकार सी कड़क ठठा हँसती विद्युत की धारों में
> बन-काल-हुताशन खेल रही पगली मैं फूट पहाड़ों में
> अंगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन । "[70]

उपर्युक्त उद्धरण में तलवार की झंकारें एवं क्रुद्ध हुंकारें वीर रस के अनुभावों की सृष्टि करती हैं, बिजली एवं आग सैनिकों के उबलते

क्रोध,मृत्यु और नाश का वेग भरती है. भूचाल और तूफान क्रांति की व्यापक अव्यवस्था,भीषण संहार और घोर अस्तव्यस्तता का बिंब प्रस्तुत करते हैं ।

## व्यापार बिम्ब

व्यापार अनेक प्रकार के होते हैं. कुछ दैनिक जीवन से संबंधित होते हैं, कुछ संस्कृति सं संबंधित होते हैं और इनके भी अनेक भेद-प्रभेद हो सकते हैं जो कि असंख्य हैं, उनमें से कुछ के उदाहरण निम्नांकित हैं --

" राष्ट्र गगन में आज विषम घन घुमड़ रहे हैं
गर्व-सहित वे गरज-गरजकर उमड़ रहे हैं
कुछ भूरे कुछ श्वेत और कुछ कलुषित काले
किन्तु पश्चिमी मानसून से हैं मतवाले
ब्रज-भारत पर इन्द्र का
यह अविवेक विधान है
गिरिधर ने भी ले लिया
गिरिवर छत्र समान है । " 71।

यहाँ पर असहयोग आंदोलन के समय की हलचल को बादलों एवं उनकी गरजना के व्यापार बिंबों द्वारा स्पष्ट किया गया है. इसी प्रकार---" अंधकार की बेड़ी में ज्यों कैद उजाला ।
दिनकर को थी कैद किये मेघों की माला ।।
कृष्ण कालिया की जलती फफकार बीच थे ।
पवनपुत्र- असुरों की कारागार बीच थे ।। 72 ए

## सांस्कृतिक बिम्ब

सांस्कृतिक बिंब दैनंदिन व्यापार से भिन्न विशेषता रखते हैं,

इनमें किसी व्यापार को स्पष्ट करने के लिए, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों की बिंब सृष्टि होती है । लक्ष्मीनारायण कुशवाहा तथा श्री पार्षद की रचनाओं में प्राप्त ये बिम्ब उल्लेखनीय है--

" रानी क्या थी आज बन गई चण्डी थी ।
आज भरी शोणित से हर पगदण्डी थी ।
भारत-शिव पर मुण्डदान करवाने को ।
इधर-उधर खटकाती जीवन कुण्डी थी ।।
एक ज्योति सी चमक उठी थी प्रांगण में ।
दीप्त हो उठी थी रानी कण-कण-कण में ।
शक्ति घूंट क्षण-क्षण सैनिक गण पिये गये,
तन मन से लग गये वीर पारायण में । " [72]

उपर्युक्त उद्धरण में रानी की हुंकार वीर रस के अनुभावों की सृष्टि करती है. शोणित से भरी पगदण्डी एवं शिव पर मुण्डदान करवाना क्रांतिकारियों में क्रोध,मृत्यु एवं बलिदान का वेग भरता है. शक्ति घूंट का सैनिकों द्वारा पान क्रांति का बिंब प्रस्तुत करते हैं. यहाँ पर रानी का वीरत्व चण्डी के समान वर्णित कर पौराणिक बिंब कीसृष्टि की गयी है ।

" क्यूरोकेसी किला सुदृढ़ लंका से बढ़कर ।
कृष्ण एक है किन्तु करोड़ों कंस भयंकर ।। " [73]

यहाँ पर अनेक पौराणिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक शब्दों के द्वारा सांस्कृतिक बिंब योजना की गयी है ।

### अन्य संवेद बिम्ब

काव्य में यद्यपि दृश्य बिंबों का प्राधान्य रहता है पर अन्य इंद्रियों से संबंधित संवेदनाओं को जगाने वाले बिंब भी काव्य में विशिष्ट

महत्व रखते हैं और उनका वर्णन अलग प्रभाव डालता है. इन संवेद बिंबों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं --

### स्पर्श बिम्ब :-

" गौरवमय बुन्देलखण्ड का छूकर कोना-कोना
स्वामी प्राणनाथ का चलने लगा वशीकर टोना ।
हटी नींद की रात, जागरण हँसता आया पहला,
तम पर छाया ज्यों प्रभात का आतम सुघर सुनहला । "[74]

### घ्राण बिम्ब

" वह कली के गर्भ से फल-
रूप में, अरमान आया,
देख तो मीठा इरादा, किस
तरह, सिर तान आया
डालियों ने भूमि रुख लटका
दिये फल, देख आली,
मस्तकों को दे रही
संकेत कैसे, वृक्ष डाली ।
फल दिये या सर दिये तरु की कहानी,
गूंथकर युग में बताती चल जवानी । "[75]

उपर्युक्त उद्धरण में जीवन की अल्पता को कवि घ्राण बिंबों के माध्यम से व्यक्त करता है. उसका अल्पता बोध ही इस बिम्ब में मुखरित है ।

### श्रवण बिम्ब

जहाँ पर श्रवण को प्रभावित करने वाली ध्वनि सृष्टि की जाती है,

जैसे :--

" फर-फर-फर-फर-फर फहर उठा अकबर का अभिमानी निशान ।
बढ़ चला कटक लेकर अपार मद-मस्त द्विरद पर मस्त मान ।।
कोलाहल पर कोलाहल सुन शस्त्रों की सुन झनकार प्रबल ।
मेवाड़ केसरी गरज उठा सुनकर अरि की ललकार प्रबल ।। "[76]

### आस्वाद बिम्ब

इसमें जिन बिंबों की सृष्टि की जाती है उनका संबंध जिह्वा की आस्वाद शक्ति से रहता है, जैसे--

" चटकार लगी थी खंगर में, सिर-कलम तुरंत तराशी थी ।
आ गई पढ़ाने को जैसे, गोरों को रानी झाँसी थी ।। "[77]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संवेद बिंबों का अपना अलग एवं विशिष्ट प्रभाव वीर काव्यों में दृष्टिगोचर होता है. इसके अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने शीत ताप संबंधी बिंबों एवं सान्द्र बिंबों को भी ग्रहण किया है. निराला ने मधु गुंजन से दिशाओं को निनादित करने वाले भ्रमरों का उल्लेख कर बिंबों की झड़ियाँ लगा दी हैं --

" खुली कलियों से कलियों पर नव आशा-नवल स्पन्दभर भर,
व्यंजित सुख का जो मधु-गुंजन वह पुंजीकृत बन-बन उपवन,
हेमहार पहने अमलतास, हँसता रक्ताम्बर पर पलास,
कुन्द के शेष पूजार्घ्यदान, मल्लिका प्रथम-यौवन-शयान,
खुलते स्तवकों ली लज्जाकुल नतवदना मधुमाधवी अतुल
निकला पहिला अरविन्द आज, देखता अनिन्द्य रहस्यसाज ।[78]

### मानस बिम्ब

अभी तक हमने ऐन्द्रिय बिम्बों पर विचार किया है जिसके अंतर्गत किसी ऐन्द्रियक अनुभूति को विशेष रूप से प्रभावित करने की विशेषता

विधमान रहती है. " परन्तु ऐसे भी बिंब होते हैं जो ऐन्द्रिय बिंब होते हुए भी इंद्रिय विशेष की अपेक्षा हमारे मन पर विशेष प्रभाव डालते हैं. ऐसे बिंब मानस बिंब कहलाते हैं. इनमें या तो कोई भावात्मक प्रेरणा रहती है और कोई वैचारिक प्रेरणा. अतः इनमें भाव या अर्थ तत्व प्रधान रहता है. आलोच्य कृतियों में इनका विधान पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता किन्तु इनके प्राप्त रूपों को संक्षेप में रखा जा रहा है ।

## भाव बिंब

भाव अमूर्त होता है और दृष्टिगोचर नहीं होता, उसकी मन को अनुभूति होती है. अतः भाव बिंब वह है जो कल्पना-ग्राह्य हो तथा जिसे केवल मन अनुभव करे. भाव बिंबों के संबंध में डा० कैलाश वाजपेयी ने कहा है ... " अप्रस्तुत की अस्पष्टता तीव्रानुभूति और भावावेश आदि जो विशेष रूप से छायावादी काव्य का गुण माने जाते हैं , नवीन गीति कविता में एक परंपरा और दोष के रूप में भी भाव बिंबों का भी आधिक्य है.[80] जैसे--

" पूछा न्याय मंदिर ने
हम से
है क्रान्ति क्या ?
क्रान्ति
भावनाओं का एक उन्माद है ।
यह उन्माद
उन्माद ध्वंसकारी नहीं
मंडन की क्रोड़ में लिए है कर्मशीलता । "[81]

## विचार बिम्ब

" ललकार रहा बैरी दल तुम रण विचार में डूबे
तलवार शीश पर लटकी, तुम बाँध रहे मनसूबे ।।

.. ... ....

क्यों दूध कलंकित करते, क्षत्राणी के सीने का ।
बोलो तो रूप यही है क्षत्रिय-जन के सीने का ?
धिक्कार तुम्हारे बल को ! धिक्कार रवानी को है ।
अरि गरज रहा सीने पर, धिक्कार जवानी को है ।" [82]

अथवा,

" पृथ्वी की छाती फोड़ कौन ये अन्न उगा लाता बाहर ?
दिन का रवि, निशि की शीत, कौन लेता अपने सिर आँखों पर ?
कंकड़ पत्थर से लड़कर के खुरपी से और कुदाली से,
असर कंजर को उर्वर कर चलता है चाल निराली ले । " [83]

उपर्युक्त विवरण से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि बिंब योजना एक प्रकार से काव्य के तत्व,तात्पर्य एवं प्रतिपाद्य को ग्रहण करने के माध्यम पर आधारित है. बिंब रचना कवि की सहज प्रक्रिया है उसके माध्यम से बात कहना काव्य की रचना का मूल विधान है। आधुनिक हिन्दी के वीर काव्यों के कवियों ने बिंबों का यथास्थान सुंदर विधान किया है जो सम्बन्धित कवियों की काव्य-चेतना का परिचायक है ।

## प्रतीक

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य अथवा गोचर विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है, [84] अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान रूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली

वस्तु प्रतीक है. दूसरे शब्दों में प्रतीक अभिव्यक्ति का वह माध्यम है जिसके द्वारा हम प्रस्तुत और दृश्यमान वस्तु को किसी अप्रस्तुत अथवा अदृश्यमान वस्तु का प्रतिनिधि बनाकर प्रस्तुत करते हैं. ईश्वर का प्रतिनिधित्व विभिन्न मूर्तियों द्वारा किया जाता है. ये मूर्तियाँ ईश्वर का ही प्रतीक हैं. आदिम लोग इन्हें प्रतीकों को गण चिह्न ( Totem ) के रूप में ग्रहण करते थे. उनके शेर, साँप, पेड़, नदी, पवन आदि सभी देवता सूचक थे . अतः इनमें से एक या एकाधिक को वह अपने कबीले का गण चिह्न या प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करते थे. इन प्रतीकों से उनके जातिगत मनोविज्ञान का पता लगता है. मनुष्य की भाषा भी चित्रों और प्रतीकों द्वारा विकसित हुई है. आज राष्ट्र की ध्वजाएँ, राष्ट्रीय पक्षी आदि प्रतीक के ही अवान्तर रूप हैं. स्वास्तिव को हमारे यहाँ कल्याण का चिह्न माना जाता है, परन्तु यही स्वास्तिव किंचित परिवर्तन के साथ जर्मनी में अधिकार के आतंक का प्रतीक बन गया था. अतः प्रतीकों का अध्ययन एक प्रकार से मानव मन का अध्ययन है ।

हमारे विवेच्य काल ( सन् 1920 से लेकर 1965 तक ) में छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद युग आते हैं, जैसाकि पूर्ववर्ती अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है. छायावादी युग में प्रकृति संबंधी प्रतीक अधिक आते हैं. इस युग के कवियों का प्रिय विषय ही प्रकृति था अतः वे समस्त भावों की अभिव्यक्ति प्रकृति के प्रतीकों द्वारा करते थे. आँधी, नक्षत्र, मधुमय वसन्त, कुसुमदल, चंद्रकान्त, मणि आदि प्रतीक छायावादी कवियों में रूढ़ि बन गये थे. जयशंकर प्रसाद म्लान भावों के लिए बासी फूल, पंत रूढ़ियों के लिए जीर्ण पत्र, क्रांति के लिए पावक कण जैसे नवीन प्रतीकों का प्रयोग करते थे. सुभद्राकुमारी चौहान ने " वसंत " को पतझड़ का प्रतीक माना है तो दिनकर ने क्रांति के लिए " विपथगा " एवं शिव के ताण्डव " को ही

प्रतीक बना लिया है ।

अन्य प्रकार के प्रतीक सांस्कृतिक प्रतीक हैं. निराला की कविता में ये प्रतीक प्राय: मिलते हैं. निराला ने अपनी कविता " छत्रपति शिवाजी का पत्र " में शंख और मुरली के पौराणिक प्रतीकों द्वारा उद्बोधन और माधुर्य के भावों को व्यक्त किया है ।

प्रगतिवादी कविता में नये ढंग के प्रतीक आये. इन कवियों ने प्रकृति की अपेक्षा मानव तथा उनकी विभिन्न क्रियाओं को अपने प्रतीकों का विषय बनाया है. दिनकर एवं निराला ने " शिव के ताण्डव " एवं " श्यामा " को क्रांति का प्रतीक, नवीन क्रांति के लिए काली एवं दुर्गा, " रणचण्डी " में विश्वनाथ पाठक ने तथा लक्ष्मीनारायण कुशवाहा ने दुर्गा को क्रांति की देवी का प्रतीक बनाया है. द्रौपदी, अभिमन्यु, अर्जुन, द्रोण, पाण्डव, दु:शासन, धृष्टराष्ट्र, राणा प्रताप, रत्नसिंह, लक्ष्मण, मेघनाद आदि आधुनिक मानवों के प्रतीक बनकर आये हैं. इसी प्रकार धनुष, शर, खड्ग आदि ने भी अपने नये अर्थ ग्रहण किये हैं. इनका वर्णन यहाँ उपादेय है..

## आध्यात्मिक प्रतीक

आध्यात्मिकता कभी भी स्पष्ट शब्दों में व्यक्त नहीं होती. यह एक ऐसा गूढ़ रहस्य है, जिसे गूंगे के गुड़ की संज्ञा दी गयी है. यह अनुभव की वस्तु है. इस अनुभूति के संबंध में यह कहना आसान है कि वह कैसी है, परन्तु यह कहना कठिन है कि वह क्या है ?

माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, निराला, सोहन लाल द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर एवं मलखान सिंह सिसौदिया ने आध्यात्मिक प्रतीकों को अपने काव्यों में ग्रहण किया है.

सोहनलाल द्विवेदी " नवयुग की शंख ध्वनि पथ पर " में काल को प्रतीक बनाकर कहते हैं ......

" बच न सकोगे इन लपटों से,
महाकाल की इन झपटों से,
अत्याचार छद्म कपटों से । " [85]

मलखानसिंह " सिसौदिया " आध्यात्मिक प्रतीक प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ---

" एक बार जीवन में बसन्त आता,
बार-बार यह यौवन ज्वाल नहीं आता,
रूप गर्व मत कर नमरूद समान यहाँ ।
मेरे तेरे से आए कितने न यहाँ
कितने सुन्दर धनपति आए,चले गये,
हातिमताई, शदाद आए, चले गये ।
बस, कमख्वाब आखिरी क्षण तजना होगा,
तुझे धूल में भूमि शयन करना होगा । " [86]

## ऐतिहासिक प्रतीक

इतिहास के चरित्रों एवं घटनाओं के माध्यम से जब किसी भाव या विचार को व्यक्त किया जाता है तो वहाँ ऐतिहासिक प्रतीक होते हैं. इतिहास के अनेक चरित्र ऐसे हैं जिनका संबंध किसी विशेष भावना से जुड़ गया है. अतः ऐसे प्रतीकों का सहज गहरा प्रभाव होता है. प्राचीन हिन्दी काव्यों में ऐतिहासिक प्रतीक का विशेष प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु नये काव्य में ऐसे प्रतीक का काफी प्रयोग हुआ है. [87] इसके दो-तीन उदाहरण द्रष्टव्य है --

1) पृथ्वीराज वीर पर यवन लगाये पहरा ।
वीर शिवा पर मुगलों का प्रलयी घन गहरा
तेग बहादुर गुरु बन्धन में हाथ बंधे थे
बंदा वीर शलाखों से चहुँ ओर घिरे थे । [88]

2) है भारत संग्राम महाभारत से दुस्तर
बैठे हैं जयचंद आज भारत के घर-घर
इसीलिए यह ईश का यह नवीन अवतार है
जिसके शुभ संग्राम में सत्य सदस्यता सार है
बन कर नर सिंह विजय करना ही होगा-
हिरनाकुश का हाथ उन्हें धरना ही होगा । " [89]

इन कवियों ने बलि की भावना के लिए ईसा एवं सूली का ऐतिहासिक प्रतीक ग्रहण किया है. ईसा बलि देने वाले व्यक्ति के प्रतीक हैं और शूली बली भावनाओं की ..

" तू सेवक है, सेवाव्रत है, तेरा जरा कुसूर नहीं,
शूली वह ईसा की शोभा वह विजयी दिर दूर नहीं ।[90]

## राजनीतिक प्रतीक

प्रायः विद्वानों का मत है कि राजनीति और साहित्य में छत्तीस का सम्बन्ध है. परन्तु अपने युग के प्रति जागरूक साहित्यकार अधिक सजीव कविता लिख सकता है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता. इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं --

" एक ओर युद्धोन्माद अंधा, करता है गर्हित खूनी धंधा ।
किन्तु दूसरी ओर लोक मुगल है, है गुलाब का फूल शान्ति अंचल
एक ओर हर-हरा पतझर, उधर मुस्कराता है सुकुमार
करता समर विरोधों से जीवन, और घटा से लड़ती ज्योति किरन

विजय पराजय की क्या चिन्ता,न्याय सत्य का ऊँचा झण्डा है ।[91]

सोहनलाल द्विवेदी " सेवाग्राम " नामक कविता में कहते हैं --

" देश की समस्या सभी
सुलझती रहती यहीं,
राजनीति की है पटशाला भारत की । "[92]

## विविध प्रतीक

उपर्युक्त प्रतीकों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य प्रतीक भी दृष्टिगोचर होते हैं -----

### प्रकृति सम्बन्धी प्रतीक

माखनलाल चतुर्वेदी जी राष्ट्रीय चेतना की संवाहिका भी प्रकृति को मानते हैं. नयी पीढ़ी के मन में जो विद्रोहाग्नि निरंतर सुलगती रहती है, उसका प्रकाशन भी कालिका के प्रतीक द्वारा किया गया है. कालिका को प्रतीकार्थ प्रयुक्त करना नयी पीढ़ी के प्रति कवि की आस्था और प्रतीति का द्योतक है. कवि का ऐसा विश्वास है कि नयी पीढ़ी द्वारा ही राष्ट्र का कल्याण अधिक हो सकेगा।

" पल्लवों के बीच से, कालिका उठी क्यों सिर उठाये ।
क्यों उदार विनाश बेला के भ्रमर ने गीत गाये । "[93]

यहाँ पर कालिका विद्रोह से भरी हुई नयी पीढ़ी की प्रतीक है,,एवं भ्रमर उस समाज का प्रतीक है जो राष्ट्र की मुक्ति क्रांति के गीत गा रहा है ।

इसी प्रकार नवीन जी मातृभूमि के चरणों में सर्वस्व न्यौछावर करना ही देश भक्तों का कार्य है. स्वतंत्रता की देवी रक्त की प्यासी है. बिना लहू दान के फल की प्राप्ति संभव नहीं. यौवन के ईंधन का

प्रतीक उन्होंने फागुन मास को माना है. कवि के शब्दों में --

" फाग सुहाग भरी होली का यहाँ कहाँ रस राज ’
अरे ओ, मुखरित फागुन मास । " [94]

" आर्यावर्त " में भी कवि ने मेघ को क्रांति का प्रतीक बनाकर कहा है ---

" जैसे, घोर भूधर से, घेर नभोदेश को
उमड़ चले हैं मेघ भादों के भयावने
दिन और रात का न भेद रह जाता है,
कौंधती है चपला विदीर्ण कर तम को,
मानों महिषासुर के फाड़के हृदय को,
घोर धारवाली तलवार कौंधी काली की " [95]

## पौराणिक प्रतीक

आलोच्य काल के कवियों ने पौराणिक प्रतीक का प्रयोग बहुत अधिक किया है, क्योंकि इसके माध्यम से जीवन की गहरी तीखी अनुभूतियाँ व्यक्त की जाती है. ये प्रतीक रामायण, महाभारत एवं अन्य पौराणिक कथानकों से ग्रहण किये गये हैं. राष्ट्रवादी कवि होने के कारण इन कवियों की दृष्टि सदैव सांस्कृतिक ऐक्य एवं अभ्युत्थान की तरफ रहती थी. उनकी धारणा थी कि जिस देश में सांस्कृतिक ऐक्य का अभाव होगा, वह कैसे समृद्धशाली बन सकेगा. ये कवि देश के अनैक्य पर विचार करते-करते राम युग तक पहुँच जाते हैं. जहाँ उसे कैकयी की दूषित मनोवृत्ति गृह कलह के लिए उत्तरदायी लगती है. माखनलाल जी ने इस समसामयिक जीवन-स्थिति के प्रकाशनार्थ कवि ने अतीत के प्रतीक का आश्रय लिया है--

" किन्तु कैकयी कलह मचा है
राष्ट्र, नगर, घर-घर में । " [96]

कवि माखनलाल चतुर्वेदी महाभारत युगीन नरसंहार की पुनरावृत्ति के आकांक्षी नहीं हैं और इसीलिए बार-बार ऐसी परिस्थिति से बचने का संदेश देते हैं जो मानव को भीषण युद्ध की ओर उन्मुख कर रही थी...

" आज कोई विश्व-दैत्य तुम्हें चुनौती दे
औ महाभारत न हो पाये सखे ! सुकुमार
बलवती अक्षौहिणियाँ विश्व नाश करें
शस्त्र मैं लुंगा नहीं की कर सको हुंकार । " [97]

इन प्रतीकों के अतिरिक्त कृष्ण, शंकर, पार्वती, दुर्गा आदि के अनेक प्रतीक भी ग्रहण किए गये हैं. इनका संक्षिप्त उल्लेख प्रासंगिक ही होगा --

इन कवियों ने स्वाधीनता और स्वच्छन्दता का प्रतीक गोपियों को माना है. चतुर्वेदी जी ने तो गोपियों के द्रौपदी की भाँति क्रांतिकारी रूप को राष्ट्र की मुक्ति एवं स्वाधीनता का प्रतीक मान लिया है ---

" आज यमुना के स्वरों फिर वेणु बोली,
एशिया की गोपियों ने वेणी खोली । " [98]

राष्ट्रीय चेतना से युक्त वीर रस की रचनाएँ राष्ट्रीयता की भावनाओं से प्रेरित हैं. उनकी राष्ट्रीय विचारधारा के संवाहक केवल पुरुष ही नहीं, वरन् नारियाँ भी हैं. पौराणिक संस्कृति में शंकर के साथ पार्वती, दुर्गा एवं काली जैसी देवियों का भी कम महत्व नहीं है-

" रुद्राणी, चंडिका, कपर्दिनि
खड़ी भीत हो कोने में " [99]

एवं

" नाचती थी चंडी जिस धौंसे की पुकार पै,
जिन आर्यवीरों की समर-सज्जा देख के
चारों ओर घोर हाहाकार मच जाता था,
आज वही सेना हुई शेष तुच्छ ओलों-सी । " [100]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आलोच्य कृतियों में प्रतीक विधान के विभिन्न रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं. इन कवियों ने प्रतीकों की केवल विषयगत भंगिमाओं को ही नहीं, अपितु शैलीगत भंगिमाओं को भी स्पष्ट किया है. वास्तविक में इन कवियों के काव्य में प्रयुक्त प्रतीक उनकी कविताओं को विशेष अर्थवत्ता देते हैं.

## छन्द योजना

छन्द का अभिप्राय है " बंधन " या " मर्यादा ", अतएव मात्रा या वर्णों की " मर्यादा " को " छंद " अभिधा दी जा सकती है. भाषा में शब्द यों तो भी स्वच्छन्द नहीं होते, अर्थ द्वारा नियंत्रित होते हैं, फिर काव्य में तो उन्हें अपनी स्वतंत्र लय को कविता के समन्वित लय में डुबा देना पड़ता है. उन्हें स्वर और भाव की मैत्री में पूर्ण रूप से योग देना पड़ता है. इसीलिए कविता में शब्द योजनाबद्ध होते हैं किन्तु इस बंधन से ही संगीत की सृष्टि होती है जिसका आधार है स्वर मैत्री, स्वर-संप्रसारण, आरोह-अवरोह आदि, कविता में भी यही बात दिखलायी पड़ती है. लय या संगीतात्मकता काव्याभिव्यक्ति का प्राण है. अपनी अनुभूति को कवि छन्द मर्यादा में लयात्मक ढंग से प्रस्तुत करके अधिक हृदयग्राही एवं प्रभावोत्पादक बना देता है. छन्दगत

संगीतात्मकता पाठक के मन को अनायास ही अपने मोह पाश में आबद्ध कर लेती है. कवि पंत ने " पल्लव " की भूमिका में लिखा है ..

" छंद की सीमा में बंधकर भाव अधिक वेगवान और प्रभावशाली हो जाता है, जिस प्रकार तटों के बंधन से सरिता वेगवती बनती है. छन्द के आवर्तन में एक ऐसा आह्लाद होता है जो तुरन्त मर्म को छू लेता है. कवि के मानस में काव्य रचना के पहले जो भाव या संवेदन होता है, छंद उसकी अभिव्यक्ति ही नहीं करता, बल्कि उस भाव, संवेदन तथा अनुभूति को तद्वत पाठक और श्रोता के मन में संचारित करता है । " [101]

छन्द दो प्रकार के होते हैं -- मात्रिक और वर्णिक. संस्कृत साहित्य में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अति विरल है. जिन मात्रिक छंदों का प्रयोग संस्कृत साहित्य में हुआ है, हिन्दी में उनका प्रयोग नगण्य है. आधुनिक हिन्दी काव्यों में प्रयुक्त मात्रिक छंद अधिकांश रूप से तो हिन्दी के अपने हैं. कुछ अपभ्रंश एवं प्राकृत के वे छंद हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में परंपरागत रूप से होता चला आ रहा है. कुछ छंद बंगला और फारसी के छंद शास्त्र से प्रभावित हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं जिनका निर्माण कवियों ने स्वतः ही कर लिया है. यथा---

### वंशस्थ -

यह समवृत्त है जिसमें जगण, तगण, जगण और रगण के क्रम से बारह वर्ण होते हैं. छन्दोमंजरी कार ने इसे वंश स्थविल नाम दिया है. [102] श्री आनन्दकुमार के " अंगराज " महाकाव्य में भी वंशस्थ छंद का प्रयोगाधिक्य है. " अंगराज " के चौथे, दसवें, बारवें, चौदहवें तथा इक्कीसवें सर्ग में इस छंद का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है. एक उदाहरण द्रष्टव्य है --

निशीथ या तारक, चन्द्र हैं न ये
अतीत के अंकित चारु चित्त हैं ।
विलोकिये रावण से हरी हुई
सशोक जाती यह मातृ जानकी । " 103

## शिखरिणी

इसमें यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, तथा अन्त में एक लघु और गुरु होते हैं. 104 इस वृत में 17 वर्ण होते हैं तथा 6 और 11 पर यति होती है. इस छन्द के कुछ प्रयोग आधुनिक महाकाव्यों से उद्धृत हैं --

विशाला शाला में, विमल नभ में, भूमिजल में ।
हसन्ती सेमन्ती, नलिन नलिनी पुष्पदल में ।।
विमुग्धा चन्द्रा यों, अब बन गई सर्व सुलता ।
यथा लज्जाहीना, सुरत-निरता वार- वनिता ।। " 105

इसके अतिरिक्त वैतालीय, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी, पृथ्वी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है. परन्तु ये अधिकतर गुप्त जी द्वारा " साकेत " में प्रयुक्त किये गये हैं.

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी ने छंद साहित्य में पर्याप्त विकास कर लेने पर भी संस्कृत छंद परंपरा का पूर्णतया परित्याग नहीं किया है. तुकान्त एवं अतुकान्त दोनों शैलियों में संस्कृत के वर्णवृत्त हिन्दी की आधुनिक कविता में प्रयुक्त हुए हैं. इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के छन्दों का भी प्रयोग हुआ है, यथा--

## गीतिका

इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ हैं. दूसरे एवं तीसरे में 14,

12 पर किन्तु पहले और चौथे में 12,14 पर यति होती है. ये दोनों ही नियमानुकूल हैं --

" लोक शिक्षा के लिए, अवतार जिसने था लिया,
निर्विकार निरीह होकर, नर सदृश कौतुक किया ।
राम नाम ललाम जिसका, सर्व- मंगल-धाम है ,
प्रथम उस सर्वेश को, श्रद्धा समेत प्रणाम है ।। " 106

दोहा -

यहाँ विषम में 13 और सम में 11 मात्राएँ तो हैं ही पर साथ ही दोहे की निर्दोषता के लिए अनिवार्य विषम चरणों के आदि में जगण का अभाव है- और अंत में लघु भी है--

" जय झाँसी गढ़ लच्छमी, राजत त्रिविध अनूप ।
गति चपला द्युति चंद्रिका, समर चंडिका रूप ।। " 107

वीर छन्द

इसके प्रत्येक चरण में 8,8 और 15 की यति पर 31 मात्राएँ होती हैं. अंत में लघु होता है. कहीं कहीं पर कुछ परिवर्तन भी हैं. यथा---

" वीरों की सेना तड़प उठी, चहका सा तन पर लगा दिया ।
ले सकें न अंगड़ाई केहरि,तब तक सिंहों को जगा दिया ।।
मारुत गति से आया टोपे,बोला," अब पल भर देर न हो ।
इतने गोले तुम बरसादो,कोई स्वदेश में गैर न हो ।। "108

एवं

" पुरुष हृदय गंभीर बड़ा है,
सहज न मिलती उसकी थाह
कैसे लोग छिपा लेते हैं,

मन में चुटकी लेती चाह । " [109]

## अमितघर छन्द

मोहनलाल महतो " वियोगी " ने " आर्यावर्त " इसी अमिताघर छंद में पहले पहल लिखा है ---

" महाराज दिल्लीपति आये दरबार में ।
मूँछें थी चढ़ी हुई, कठोर मुख मुद्रा थी,
मानो लौह निर्मित प्रचण्ड भुजदण्ड थे ।
सांड जैसे कंधे, था शिला सा वक्ष, क्षीण कटि
जैसे मृगराज की हो- उन्नत शरीर था ।
भृकुटि कुटिल नेत्र, नेत्र श्येन से सतेज थे
गति गंभीर थी, परन्तु पद पद से
होता था ध्वनित विकराल क्रोध मन का । " [110]

## मुक्त छन्द

निरालाजी ने मुक्त छन्द की विशेष देन हिन्दी कविता को दी है. इस सम्बन्ध में उन्होंने परिमल की भूमिका में लिखा है --

" मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है. मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है . " [111]

उन्होंने छन्दोबद्ध कविता को उपवन की बँधी प्रकृति कहा है और छन्दोमुक्त कविता को वन्य प्रकृति. इसके उदाहरण इस प्रकार हैं-

" जागो फिर एक बार !
समर में अमर कर प्राण
गान गाये महा सिन्धु से

सिन्धुनद तीर वासी ।।
चतुरंग चमू संग
सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा
किसने सुनाया यह
वीर जन सम्मोहन अति
दुर्जय संग्राम राग
फाग खेला रण का
बारहों महीनों में ।
शेरों के मांद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार । " [112]

मुक्त छन्द की सबसे बड़ी विशेषता अनुप्रास रही है, उपर्युक्त उदाहरण में " समर में अमर कर प्राण ", तुरंगों पर चतुरंग चमू संग " आदि में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास का स्वाभाविक समावेश है, जिससे शब्दावली श्रवण सुखद तो है ही, उसमें प्रवाह भी आया है. इसके अतिरिक्त इसमें " दुर्जय संग्राम राग " और " फाग खेला रण का " ये दो पंक्तियाँ हैं , इनमें पहल के " राग के साथ दूसरी के " फाग " का प्रयोग " मध्यान्तरानुप्रास " है, एवं चढ़ाऊँगा और कहाऊँ ऐसी ही अन्त्यानुप्रास हैं. -" आया है आज स्यार " के साथ " जागो फिर एक बार " की पुनरावृत्ति भी इसी प्रवृत्ति की द्योतक है.

" कुरुक्षेत्र " में दिनकर ने भी इस छंद का प्रयोग किया है.[113]

## कतिपय नवीन छंद

नवीन जी की कृति " प्राणार्पण " में वर्ण की दृष्टि से 21 वर्ण मिलते हैं, फिर भी उसे स्रग्धरा नहीं कहा जा सकता. एक दृष्टान्त पर्याप्त होगा --

" घटनाओं का यह चित्र नहीं, कोई कल्पना उड़ान नहीं,
यह कोई कला-विलास, मेरा स्पन्दन निष्प्राण नहीं,
जो-जो देखा है आँखों से, जो-जो झेला है इस तन पर,
जो-जो भोगा है जीवन में,जो-जो बीती है इस मन पर,
उसका यह किंचिन्मात्र यहाँ छोटा सा दिग्दर्शन भर है,
ये हैं मेरे पूजा-प्रसून,मेरी श्रद्धाका निर्झर है । " 114

इसके प्रत्येक चरण में 32, 32 मात्राएँ और प्रथम चरण में 21 वर्ण हैं.

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छन्द, लय, तुक, संगीतात्मकता आदि के माध्यम से वीरकाव्यों में अनुरुप नाद सौन्दर्य उत्पन्न किया है. कवि पूर्णतया परंपरा से बँधकर नहीं चले. कहीं उन्होंने उसका अनुगमन किया है तो कहीं तो छन्द प्रयोगों के माध्यम से काव्य चेतना को व्यापकता प्रदान की है । संस्कृत के वर्ण वृत्तों का संस्कृत के समस्त पदों, विभक्तियुक्त शब्दों और लम्बे-2 वाक्यों की खपत आसानी से हो सकती थी. किन्तु हिन्दी की प्रवृत्ति संस्कृत से विपरीत है. आज हिन्दी के मात्रिक छन्दों में मात्राओं और चरणों की संख्या नियमित होते हुए भी उनकी लय में शब्दों के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता होती है और कवि अभ्यास द्वारा उन्हें नहीं सीखते, प्रयोग एवं संस्कार द्वारा ही समझ लेते हैं. इस प्रकार कवियों ने लय एवं छंद संबंधी विविध प्रयोग किए और विविध भाषाओं से प्रभाव ग्रहण करके हिन्दी काव्य साहित्य को समृद्ध और प्रभावपूर्ण बनाया है. इसके अतिरिक्त इस काव्य परंपरा में मिलने वाली

छन्द प्रयोग की बहुलता के व्यापक धरातल को प्रकाश में लाती है. विषयानुसार छन्दों के प्रयोग और कहारों की चाल पर छन्द तथा यति-गति और शब्द रचना की योजना का सुंदर प्रयोग श्यामनारायण पाण्डेय के " जौहर " तथा श्री लालधर त्रिपाठी के " छत्रसाल " महाकाव्यों में देखा जा सकता है. इससे स्पष्ट है कि हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों में इस दिशा में शिल्प के नये आयामों का सम्यक समायोजन किया है ।

## शैली

शैली भाषा का गुण है. भाषा ही कवि के भावावेगों और विचारों की प्रक्रिया को उसके व्यक्तित्व के अनुरूप अभिव्यक्त करती है. जहाँ विचार प्रमुख रहते हैं वहाँ अभिव्यंजना गद्यात्मक होगी एवं जहाँ भाव प्रमुख होते हैं वहाँ अभिव्यक्ति गद्य का पद्य किसी रूप में भी संभव है. कविता की भाषा का निश्चित निर्माण उस स्थिति में आत्यंतिक रूप से होता है जबकि भावों में अतिशय आकुलता और तीव्रता होती है । [115]

लूकास ने अपनी पुस्तक शैली ( स्टाइल ) में भाषा की स्वच्छंदता, संक्षिप्तता और वैचारिक प्रौढ़ता आदि गुणों की चर्चा की हैं. अच्छे शैलीकार को आगाह करते हुए उसने यह सलाह भी दी है कि लेखक को हमेशा पाठक का ध्यान रखना चाहिए। कम से कम समय में अधिक से अधिक भाव या विचार सामग्री संप्रेषित करने वाला लेखक ही अच्छा शैलीकार होता है. ऐसे ही लेखकों की ओर पाठक भी सदय होता है ।

भारतीय समीक्षा में भी " शैली " पर विचार किया गया है. भारतीय आचार्यों ने यद्यपि पाश्चात्य विद्वानों की तरह सरलता, स्पष्टता, स्वच्छन्दता, प्रभावोत्पादकता शिष्टता तथा लयात्मकता

जैसे गुणों को गिनाया है, किन्तु इसके साथ-साथ इन्होंने प्रसाद, ओज एवं माधुर्य को शैली का ही गुण माना है. इसके अतिरिक्त उन्होंने रीति, शब्द शक्ति, गुण और दोष की विवेचना के साथ रीति के पोषक रस के सहायक तथा कुछ स्वतंत्र गुणों के रूप में अलग-2 ढंग से शैली की विवेचना की है ।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने शैली के तत्वों की खोज करते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है :

> " शब्द योजना, वाक्य योजना, भाव योजना और वस्तु योजना के विलक्षण संयोग को शैली कहते हैं । " [116]

अतः कहा जा सकता है कि प्रत्येक कलाकार की शैली उसके व्यक्तित्व के अनुरूप भिन्न होती है. आलोच्य महाकाव्यों, खण्डकाव्यों एवं मुक्तकों में अनेक शैलियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिसमें से इतिवृत्तात्मक शैली, संवादात्मक, प्रश्नोत्तर, वर्णन प्रधान, सिद्धान्त प्रतिपादन, चित्रण प्रधान एवं भाव प्रधान शैलियाँ प्रमुख हैं ।

## इतिवृत्तात्मक शैली

यह शैली साहित्य में उस स्थान पर मिलती है जहाँ साहित्यकार ने इतिवृत्त को प्रमुखता देकर साहित्य के अन्य अंगों की प्रायः उपेक्षा कर देता है, यद्यपि इस प्रकार की रचना को उत्तम प्रबंध की कोटि में रखना समीचीन नहीं है फिर भी विवेचना के क्षेत्र में उनको एकदम भुलाया नहीं जा सकता. हिन्दी के आधुनिक वीर काव्यों में इतिवृत्तात्मक शैली की परम्परा हम " कृष्णायन " एवं " जयभारत " जैसे प्रबंधों में देख सकते हैं ।

## संवादात्मक शैली

जहाँ प्रबन्ध काव्य के निर्माण में संवादों का प्रमुख योग होता है वहाँ यह संवाद शैली होती है. इसे प्रकारान्तर से कथोपकथन शैली भी कहते हैं. यह शैली काव्य में नाटकीयता ला देती है. हिन्दी के कुछ आधुनिक कवियों - मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, श्री कृष्ण सरल, निराला एवं गुरुभक्त सिंह भक्त ने इस शैली को विशेष रूप से प्रयोग किया है. इनके " जयभारत ", " साकेत ", " कुरुक्षेत्र ", " सरदार भगतसिंह," " विक्रमादित्य ", " आर्यावर्त " आदि में संवादों की विशेष स्थिति देखी जा सकती है. ऐसी बात नहीं है अन्य महाकाव्यों में इस शैली का अभाव हो,किन्तु उनमें यह प्रधान रूप से नहीं आयी है. संस्कृत महाकाव्यों में इस शैली का प्रचुर प्रयोग मिलता है. इस शैली के बिना काव्य का सफल निर्वाह संभव नहीं.

### प्रश्नोत्तर शैली

साहित्यिक काव्यों में इस शैली का प्रयोग हुआ तो है,पर बहुत कम. अधिकांशतः इस शैली का प्रयोग सैद्धान्तिक प्रकरणों में हुआ है. दार्शनिक ग्रंथों में इस शैली को पूर्वपक्ष " और " उत्तर पक्ष " नामों से भी अभिहित किया गया है. ऐसे प्रसंग उपनिषदों में खूब मिलते हैं. सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या और उनकी सुबोधता के लिए दर्शन ग्रंथों में इस शैली का प्रचलन करके साहित्य के लिए भी मार्ग प्रशस्त कर दिया है. कहीं-कहीं संवादों में इस शैली का प्रयोग मिल जाता है. सोहनलाल द्विवेदी ने पूजा गीत ", " चेतना ", " भैरवी ", " युगचरण ", श्यामलाल गुप्त " पार्षद " ने " झण्डा ऊँचा रहे हमारा ", श्री कृष्ण सरल ने " सरदार भगतसिंह " में इस शैली का प्रयोग कहीं-कहीं किया है ।

### वर्णन शैली

यह शैली सरल तथा अभिधाशक्ति युक्त है. इस शैली में कथावस्तु

वर्णनों से पुष्ट की जाती है. वर्णन दो प्रकार के होते हैं. :: वस्तु वर्णन एवं भाव वर्णन. वस्तु वर्णन में वस्तु या विषय को शब्द प्रत्यक्ष किया जाता है. इस प्रकार के वर्णन में परिपक्वता होती है. दूसरे प्रकार के वर्णन भाव परक होते हैं. उनमें भावों का वर्णन प्रत्यक्ष की भाँति किया जाता है. वर्णन साहित्य की विभूति होते हैं. उनके बिना साहित्य का कार्य आगे नहीं बढ़ सकता, वर्णनों का संतुलित स्वरूप साहित्य को रसात्मक गरिमा प्रदान करता है, किन्तु असंतुलित वर्णनों से साहित्यिक गरिमा विचार ग्रस्त हो जाती है, प्रबंध का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है और कहीं-2 तो वर्णनों की अधिकता कथानक को दबोच लेती है. आधुनिक हिन्दी के वीर काव्यों में " वर्णन प्रधान शैली " की प्रचुरता विद्यमान है. " जौहर ", " हल्दीघाटी ", " प्राणार्पण ", वासवदत्ता ", " छत्रसाल ", " तात्याटोपे " आदि इस शैली के परिचायक ग्रंथ हैं ।

## समास शैली

समासों की दृष्टि से शैली के दो और वर्ग हमारे समक्ष आते हैं. आलोच्य काव्यों में हमें एक प्रकार की रचनायें तो वे मिलती हैं जिनमें कवि समासों के प्रयोग की ओर अधिक सचेष्ट रहा है और दूसरी वे हैं जिनमें समास प्रयोग कहीं-2 पर मिलता है, किन्तु वह कवि की सचेष्टता का परिणाम नहीं है. सहजाभिव्यंजना में जो समास आ गये हैं वे कवि की सहज वृत्ति के ही अंग बनकर आये हैं उनमें कोई प्रदर्शन की भावना नहीं है. इनमें से पहली शैली को " प्रदर्शन शैली " एवं दूसरी को " सहज शैली " कहा जा सकता है.

किसी भी आधुनिक हिन्दी वीर काव्यों में न तो एकान्ततः " प्रदर्शन शैली " प्रयुक्त हुई है और न ही " सहज शैली " ही. किसी में एक की प्रधानता है तो किसी में दूसरी की. " सहज शैली "

प्रधान काव्यों में " हल्दीघाटी ", " कृष्णायन ", " आर्यावर्त ", तात्याटोपे ", " रश्मिरथी " एवं " सेनापति कर्ण " आदि हैं. इसके विपरीत " अंगराज " में " प्रदर्शन शैली " का प्रयोग हुआ है. यथा --

> " तरुणांकुर-संपन्न लताद्रुम-कुंज-सुपुंजित
> इन्दाम्बर-सौन्दर्य-धनी इन्दिन्दर गुंजित
> खग कुल: इजित मृग क्रीड़ित सुकेमाकर वन सा
> नन्दन- सा यह सुन्दर हैं नलिनी नन्दन सा । " 117

" सहज शैली " भी इसमें दृष्टिगोचर होती है । 118

## चित्रण प्रधान शैली

वर्णन की अपेक्षा चित्रण में कलात्मकता अधिक होती है. चित्रण प्रधान शैली में कवि भावानुरूपता, सरलता, माधुर्य एवं मर्मस्पर्शिता को अपनाने का प्रयास करता है. चित्रण में कवि प्रवाह तथा प्रभावोत्पादकता का विशेष ध्यान रखता है. इस प्रकार की शैली के ग्रंथ " तात्याटोपे ", " छत्रसाल " आदि हैं ।

## भाव प्रधान शैली

यह शैली कथा प्रवाह एवं प्रबंधात्मकता में सरलता एवं मर्मस्पर्शिता के तत्वों का नियोजन करती है. कई कविता इसी शैली का ही प्रश्रय ग्रहण करते हैं. इसमें भावों के अनुकूल शब्द योजना एवं परिवेश की सृष्टि कवि करता है. कई स्थानों पर करुणा के साथ उत्साह एवं प्रखरता के गुणों के कपाट भी खोले जाते हैं. इस प्रकार की शैली " जौहर ", " आर्यावर्त ", " सिंहद्वार ", " स्वतंत्रता की बलिवेदी ", " गोरा बध " आदि में प्राप्त होती है ।

## मुक्तक शैली

उपर्युक्त शैलियों के अतिरिक्त उन वीर काव्यों में मुक्तक शैली को भी प्रधानता प्राप्त हुई है. मुक्तक शैली प्रबंध शैली से कई अर्थों में विभेद रखती है. प्रबन्ध शैली में जहाँ कथा तथा वर्णनात्मकता को प्राथमिकता दी जाती है वहाँ मुक्तक शैली में इनको गौण स्थान प्राप्त होता है. मुक्तक शैली में जीवन के किसी एक क्षण, उद्दीप्त पक्ष अथवा मार्मिक घटना एवं संवेदनशील भाव को उद्घाटित किया जाता है. दिनकर, नवीन, माखनलाल जी, सुभद्राकुमारी चौहान, वियोगी हरि, पार्षद जी आदि सभी आलोच्य कवियों ने इस शैली को प्राथमिकता दी है ।

## उदात्त या ओज प्रधान शैली

यह शैली ओज गुण युक्त वीरता, उत्साह, भय आदि भावों का वर्णन करने वाली, दीर्घ समास युक्त पदों वाली संयुक्ताक्षरों से युक्त और उत्तेजक शैली होती है . निराला, दिनकर , श्याम नारायण पाण्डेय, लालधर त्रिपाठी, लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, लक्ष्मी नारायण मिश्र आदि कवियों के काव्य में इस शैली के उदाहरण मिलते हैं ।

## युगीन शैली

आलोच्य कवियों ने इस शैली को भी अपने काव्यों में स्थान दिया है. गीत या पद गीत और प्रगीत में अंतर है. शास्त्रोक्त रचना गीत है और आधुनिक ढंग के अपनत्व को प्रगीत की कला से विभूषित पाया है. भक्त कवियों की रचनाओं को गीत या पद कहा जाता है, परन्तु आजकल की नूतन शैली विहित मुक्तक रचनाएँ प्रगीत कहलाती हैं. नूतन एवं पुरातन के समन्वित रूप के विद्यमान होने के

कारण गीत या प्रगीत दोनों ही प्रकार की रचनाओं में अपनी कला कुशलता प्रकट की है . दिनकर, नवीन, सोहनलाल द्विवेदी एवं माखनलाल चतुर्वेदी ने काव्य में रागात्मक आवेश तथा मनोवेगों की तीव्रता का प्राचुर्य है, अभिव्यक्ति ने अपना सरल रूप ही प्रदर्शित किया है. वास्तव में कविता शब्दमय संगीत है और संगीत ध्वनिमय कविता. निराला, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी एवं मलखान सिंह सिसौदिया के काव्य में प्रगीत शिल्प में संगीत की अन्तः सलिला को प्रवहमान देखा जा सकता है ।

## मूल्यांकन

पूर्ववर्ती पृष्ठों में आधुनिक वीर काव्यों के कला सौष्ठव का जो अनुशीलन किया गया है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि इन वीर काव्यों में न केवल रस का अनन्त पारावार लहराता है बल्कि कला सौन्दर्य की अन्तः सलिला भी इनमें प्रवाहित है. ये काव्य जहाँ भाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं वहाँ सम्बन्धित कवियों ने शिल्प पक्ष पर भी ध्यान दिया है. आलोच्य काव्यों में कवियों द्वारा भाषा में सहजता और प्रसंगानुरूप उद्घोषक पदावली का सुष्ठु प्रयोग किया है और इसी कारण संभवतः यत्र तत्र अंग्रेजी, उर्दू तथा देशज शब्द भी सामासिक पदावली के साथ प्रयुक्त हुए है. इसके साथ ही भाषा की कसावट और सुन्दरता के लिए अलंकार, बिम्ब एवं प्रतीक का प्रयोग भी किया गया है. इस युग के कवियों ने जहाँ एक ओर परम्परागत प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से नया अर्थ भरने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर बिल्कुल नये प्रतीकों एवं बिम्बों का भी विधान किया है. प्राकृतिक बिंब आधुनिक वीर काव्यों में बहुलता से देखे जा सकते हैं ।

छन्दों में मुक्त छन्द का प्रयोग कवि निराला द्वारा पहले

पहल इसी युग में किया गया. कुछ कवियों ने छन्द को परिवर्धन तथा संशोधन के साथ प्रस्तुत किया है. भाव की काव्य संवेदना के अनुकूल ही मुक्त छंद का प्रयोग आलोच्य कवियों ने किया है. भाव और विषय के अनुसार छन्द योजना इनकी एक उल्लेखनीय विशेषता है. मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यों की भाँति किसी एक छंद शैली में वीर प्रबंध नहीं लिखे गये, छन्द प्रयोग की बहुलता और घटना क्रम के अनुसार उनकी विशेष योजना, जिसे हम यथास्थान दृष्टिगत कर चुके हैं, इन कवियों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है. अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है इन कवियों ने हिन्दी की छन्द परम्परा की सहज शक्ति को भली भाँति पहचाना है और उसका प्रभावशाली रूप प्रस्तुत किया है. मुक्तक काव्यों में छंद की बहुलता के साथ गीति काव्यों की अनेक विध शैलियाँ कवियों ने अपनायी हैं जो उपर्युक्त विशेषताओं के प्रकाश में इस काव्य धारा की व्यापक काव्य चेतना को प्रभावित करती है. समग्रतया देखा जाए तो भाषा, अलंकार, बिंब, प्रतीक, छन्द एवं भाषा शैली आदि कला सौष्टव के आयाम इन कृतियों में विकसित रूप में प्रकाश में आते हैं. इस प्रकार इन काव्यों में भावों और कला का मणिकांचन योग हुआ है ।

## संदर्भ सूची

1. काव्यालंकार : 1/8.
2. पं0 बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र पृ. 451 से उद्धत.
3. बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन , पृ. 276.
4. अरस्तू का काव्य शास्त्र, पृ. 13. ( भूमिका ) , भारतीय बौद्ध विचार - बुद्धघोष की भी कुछ ऐसी ही मान्यता है, देखिए.. - Dr. S.N. Gupta ; Fundamentals of Indian art ( 1954 ), 93.
5. Expression is an indivisible whole. Noun and verb do not exist in it, but are abstractions made by us, destroying the sole linguistic reality, which is the sentence - B. Croce Aesthetic (1960) P-146
6. जगदीश चन्द्र जैन : पाश्चात्य समीक्षा दर्शन, पृ. 229.
7. आलोचना, जनवरी- मार्च 1970, वक्रोक्ति सिद्धान्त परिप्रेक्ष्य, पृ. 81.
8. आलोचना जुलाई - सितम्बर 1969, युवा कविता की भाषा, पृ.79.
9. जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबंध, पृ. 124.
10. वही, पृ. 54.
11. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : प्रबंध पद्म ,पृ. 154-59.
12. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, कवि निराला, पृ. 86.
13. मैथिलीशरण गुप्त, सिद्धराज, पृ. 51.
14. वही जयभारत, पृष्ठ, 234.
15. दिनकर, हुंकार, पृ. 22.
16. वही, पृ. 20.

17. निराला, परिमल, पृ. 73.

18 श्यामलाल गुप्त " पार्षद " झण्डा ऊँचा रहे हमारा, पृ. 16.

19 वही, पृ. 21.

20. सोहनलाल द्विवेदी, युग चरण, पृ. 46.

21 वही चेतना, पृ. 55.

22. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ. 75.

23. वही; पृ. 75.

24. मलखान सिंह सिसौदिया, बंगाल के प्रति और अन्य कविताएँ, पृ.15.

25. मोहनलाल महतो " वियोगी ", आर्यावर्त, पृ. 23.

26 वही, पृ. 87.

27. गुरुभक्त सिंह भक्त, नूरजहाँ, पृ. 7.

28. श्री कृष्ण सरल, सरदार भगतसिंह, पृ. 43.

29. वही, पृ. 153.

30. माखनलाल चतुर्वेदी, माता, पृ. 17.

31 वही, पृ. 48.

32 शिवमंगल सिंह सुमन, पृ. 44.

33. वही, हिल्लोल, पृ. 103.

34. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, तात्याटोपे, पृ. 48.

35. हरिऔध, फूल पत्ते, दो चार बातें, पृ. 23-24.

36 सरस्वती, जुलाई 1912, पृ. 362.

37. काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते - आचार्य दण्डी : काव्यादर्श,
2/9

38. रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्, अलंकृतीनां सर्वासामलंकार
वसाधनम् - हिन्दी ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत, पृ. 122.

39. सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव की भूमिका, पृ. 20.

40. डॉ० देवराज , साहित्य चिन्ता, पृ. 51.
41. काव्य प्रकाश, पृ.9107.
42. द्वारिका प्रसाद मिश्र, कृष्णायन, मथुरा काण्ड, दोहा-9
43. सोहनलाल द्विवेदी, भैरवी : विप्लव गीत, पृ. 130.
44 निराला , परिमल : बादलराग ।
45 अंगराज, 21, 113.
46. वही, 20 ,11
47 नूरजहाँ, पृ. 50.
48 लालधर त्रिपाठी " प्रवासी " छत्रसाल, पृ. 284.
49 मोहनलाल महतो " वियोगी," आर्यावर्त, पृ. 136.
50. वही, पृ. 41.
51. कृष्णायन : आरोहण काण्ड, दोहा 70.
52. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, तात्याटोपे, पृ. 206.
53. दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ. 94.
54. आर्यावर्त, पृ. 63.
55 श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ. 58
56 कुरुक्षेत्र, पृ. 76.
57. कृष्णायन, द्वारका काण्ड, दोहा- 4
58. दिनकर, रश्मिरथी, पृ. 53.
59. नवीन : क्वासि, पृ. 89.
60. दिनकर , रश्मिरथी, पृ. 63.
61. वही, कुरुक्षेत्र, पृ. 48.
62. आर्यावर्त, पृ. 28
63. तात्याटोपे, पृ. 10.
64. आर्यावर्त, पृ. 129.

65 प्रसाद, लहर, पृ. 65.

66 निराला, अपरा, बादलराग 1.

67 आर्यावर्त, पृ. 73.

68. Poetic image is a more or less rensuous picture in the words to some degree metaphorical with an under note of some human emotion in its contest but also charged with and realing in to the readers of special poetic emotion or passion!

C. Day Lewis, Poetic image P. 22.

69 डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्य-मनीषा, प्रथम संस्करण, 1969, पृ.285.

70 दिनकर , हुंकार, पृ. 86.

71. पार्षद, झण्डा ऊँचा रहे हमारा, पृ. 14.

72. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, तात्याटोपे, पृ. 190.

72.A. वही, पृ. 226.

73. पार्षद, झण्डा ऊँचा रहे हमारा, पृ. 22.

74. जाजधर त्रिपाठी, छत्रसाल, पृ. 225.

75. माखनलाल चतुर्वेदी (जवानी) हिमकिरीटिनी, पृ. 113.

76. श्यामनारायण पाण्डेय, हल्दीघाटी, पृ. 121.

77. तात्याटोपे, पृ. 208.

78. निराला, अपरा, पृ. 130.

79 डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्य-मनीषा, पृ. 294.

80 डॉ० कैलाश वाजपेयी, आधुनिक हिन्दी काव्य में शिल्प, पृ. 321.

81. सरदार भगतसिंह, पृ. 172-173.

82. श्यामनारायण पाण्डेय, जौहर, पृ. 74-75.

83. सोहनलाल द्विवेदी, युगाधार, पृ. 39.

84. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 , पृ. 515.

85. पूजागीत, पृ. 66.
86. मलखान सिंह सिसौदिया, सूली और शान्ति, पृ. 8.
87. भगीरथ मिश्र, काव्य- मनीषा, पृ. 300.
88. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, तात्याटोपे, पृ. 226.
89. पार्षद, झण्डा ऊँचा रहे हमारा, पृ. 21.
90. हिमकिरीटिनी, पृ. 93.
91. सूली और शान्ति, पृ. 82.
92. सोहनलाल द्विवेदी, प्रभाती, पृ. 21.
93. माखनलाल चतुर्वेदी, माता, पृ. 85.
94. नवीन. क्वासि, पृ. 66.
95. आर्यावर्त, पृ. 93.
96. माता, पृ. 25.
97. वही (माखनलाल चतुर्वेदी) रेणु तो गूंजे धरा, पृ. 100.
98. युगचरण, पृ. 48.
99. विषपान, पृ. 34.
100. आर्यावर्त, पृ. 32.
101. सुमित्रानंदन पंत, पल्लव, भूमिका, पृ. 24.
102. वदन्तिवंशस्थबिल जतौ-जरौ-छन्दोमंजरी , द्वितीय स्तबक, पृ. 48.
103. अंगराज, पृ. 14, 24.
104. रसै : रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागा शिखरिणी - छन्दोमंजरी: 2, 1
105. अंगराज, पृ. 14, 56.
106. मैथिलीशरण गुप्त, रंग में भंग, पृ. 5.
107. वियोगी हरि, वीर सतसई, पृ. 59.
108. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा, तात्याटोपे, पृ. 98.

109. मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी, पृ. 40-41.

110 वियोगी, आर्यावर्त, पृ. 19-20.

111 निराला, परिमल, भूमिका, पृ. 12.

112. निराला, जागो फिर एक बार, शीर्षक कविता.

113. दिनकर,कुरुक्षेत्र, पृ. 9.

114. नवीन, प्राणार्पण,

115. एफ० मिडल्टन मरे : दि प्राब्लम ऑफ स्टाइल, पृ. 64.

116. पं० सीताराम चतुर्वेदी : काव्यों में शैली और कौशल, पृ. 42.

117. अंगराज, सर्ग 1,पृ. 31.

118. वही सर्ग 2, पृ.50.